तत्त्वार्थसूत्रम्

Tattvārthasūtram

द्वितीयोऽध्यायः

Second Chapter

तत्त्वार्थसूत्र
द्वितीय अध्याय

इस दृश्य में जीव तत्त्व का चित्राङ्कन किया गया है। जीव के पाँच भाव - औपशमिक, क्षायिक, मिश्ररूप क्षायोपशमिक, औदयिक व पारिणामिक को चित्र के निचले भाग में पाँच घड़ों के रूप में दर्शाया है।

अन्तिम पारिणामिक में अभव्य को काले बिन्दु व भव्य को सादा बिन्दु व जीवत्व को घड़े के रूप में, साथ ही दायीं तरफ पेड़ की छाया में प्रमादी व्यक्ति के रूप में दिखाया है।

बायीं तरफ आचार्य के उपदेश को देशनालब्धि के रूप में, मध्य में करणलब्धि की अन्तिम सीमा, जहाँ सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है, ऐसे समवशरण में विराजमान तीर्थंकर भगवान् के रूप में अङ्कन है।

विशुद्धिलब्धि, क्षयोपशमलब्धि, प्रायोग्यलब्धि को तीन ध्यानस्थ आकृतियों के रूप में दिखाया है।

पाँच शरीरों में से दायीं तरफ **औदारिक** शरीर को स्त्री-पुरुष व बच्चे के रूप में दर्शाया गया है।

तैजस शरीर – दायीं ओर ऊपर बैठे मुनि महाराज के दायें कन्धे से शुभ तैजस एवं बायें कन्धे से अशुभ तैजस पुतले को निकलते बताया है।

आहारक शरीर – दायीं ओर नीचे विराजित मुनि महाराज के माथे से निकले पुतले के रूप में अंकित किया है।

वैक्रियिक शरीर – बायीं तरफ समवसरण में जाते हाथी के रूप में इसे दिखाया है । उसी के नीचे ध्यानस्थ आकृति को कार्मण शरीर के प्रतीक रूप में दर्शाया है।

चित्र के ऊपरी भाग में स्वस्तिक चार गति, चार कषायादि के रूप में प्रतिबिम्बित है। सिद्ध शिला के ऊपर मुक्त जीव है।

तत्त्वार्थसूत्रम्
Tattvārthasūtram

द्वितीयोऽध्यायः
Second Chapter

जीव के असाधारण भाव

Distinctive Characteristics of Jīva

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य
स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ।। १ ।।

(औपशमिक-क्षायिकौ भावौ मिश्रः च जीवस्य स्वतत्त्वम् औदयिक-पारिणामिकौ च।)

Aupaśamikakṣāyikau Bhāvau Miśraśca
Jīvasya Svatattvamaudayikapāriṇāmikau Ca. (1)

शब्दार्थ : **औपशमिकक्षायिकौ भावौ –** औपशमिक भाव, क्षायिक भाव; **मिश्रश्च –** एवं मिश्र (क्षायोपशमिक भाव); **जीवस्य –** जीव के; **स्वतत्त्वम् –** (जीव के) निजभाव; **औदयिकपारिणामिकौ च –** औदयिक (भाव) और पारिणामिक (भाव होते हैं)।

Meaning of Words : **Aupaśamikakṣāyikau Bhāvau -** subsidential volition, volition produced due to destruction of karmas; **Miśraśca -** and mixed disposition (volition produced due to both destruction cum subsidence of karmas); **Jīvasya -** of the soul; **Svatattvam -** distinctive dispositions (of the soul); **Audayikapāriṇāmikau Ca -** disposition as a result of rise of karmas and due to inherent nature (of soul).

सूत्रार्थ : औपशमिक भाव, क्षायिक भाव, मिश्र (क्षायोपशमिक) भाव, औदयिक भाव और पारिणामिक भाव – ये जीव के स्वतत्त्व – असाधारण भाव हैं।

English Rendering : The distinctive dispositions of the soul are the i.e. thought-activities arising from subsidence, destruction, destruction-cum-subsidence of karmas, the fruition of karmas and the inherent nature of the soul.

टीका : इस सूत्र में जीव के भावों का वर्णन किया गया है। जीवों में पाँच प्रकार के भाव पाये जाते हैं - औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के निमित्त से कर्म की शक्ति के प्रकट नहीं होने को उपशम कहते हैं और कर्मों के उपशम से आत्मा में जो भाव होता है, उसे औपशमिक भाव कहते हैं। जैसे, निर्मली (कतक) आदि के संयोग से पानी में कीचड़ नीचे बैठ जाता है और पानी साफ हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा में कर्म की निज शक्ति का प्रकट न होना उपशम है और उससे जीव के परिणामों में जो निर्मलता होती है उसे औपशमिक भाव कहते हैं। आठ कर्मों में से केवल मोहनीय कर्म का ही उपशम होता है। कर्मों के समूल विनाश होने को क्षय कहते हैं। जैसे, पूर्व उदाहरण में जो कीचड़ नीचे बैठ गया, उसका बिल्कुल अलग हो जाना। कर्मों के क्षय से जो भाव होता है, उसे क्षायिक भाव कहते हैं।

वर्तमान काल में उदय आने वाले सर्वघाती स्पर्द्धकों का उदयाभावी क्षय तथा उन्हीं के आगामी काल में उदय आने वाले निषेकों का सदवस्था रूप उपशम और देशघाती स्पर्द्धकों का उदय होने को क्षयोपशम कहते हैं। यानी सर्वघाती स्पर्द्धक अनन्तगुणे हीन होकर और देशघाती स्पर्द्धकों में परिणत होकर उदय में आते हैं। उन सर्वघाती स्पर्द्धकों का अनन्तगुणा हीनत्व ही क्षय कहलाता है और उनका देशघाती स्पर्द्धकों के रूप में अवस्थान होना उपशम है। इस प्रकार के क्षय और उपशम से संयुक्त उदय क्षयोपशम कहलाता है। जैसे, पानी की स्वच्छता को बिल्कुल नष्ट करने वाले कीचड़ के परमाणुओं के मिले रहने पर पानी में स्वच्छ-अस्वच्छ अवस्था रहती है। कर्मों के क्षयोपशम से जो भाव होता है, उसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। सर्व प्रकार से आत्मा के गुणों को आच्छादन करने वाली जो कर्मों की शक्तियाँ हैं, उनको सर्वघाति स्पर्द्धक कहते हैं और विवक्षित एकदेश से जो आत्मा के गुणों का आच्छादन करने वाली कर्म शक्तियाँ हैं, वे देशघाति स्पर्द्धक कहलाती हैं। अपनी स्थिति पूरी होने पर कर्म उदय में आते हैं और कर्मों के उदय से जो भाव होता है, उसे औदयिक भाव कहते हैं। जो भाव कर्मों के उपशम, क्षय, क्षयोपशम तथा उदय की अपेक्षा न रखता हुआ आत्मा का स्वभाव मात्र हो, उसे पारिणामिक भाव कहते हैं।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान क्षायोपशमिक भाव हैं। मात्र केवलज्ञान क्षायिकभाव है। केवल मोहनीय कर्म का ही उपशम होता है। उसमें प्रथम

मिथ्यात्व (दर्शन मोहनीय) का उपशम होने पर जो सम्यक्त्व प्रगट होता है, वह औपशमिक सम्यक्त्व भाव है। मिश्र, औपशमिक और क्षायिक – ये तीन भाव मोक्ष के कर्त्ता हैं। औदयिक भाव बन्ध का कारण है। लेकिन सभी औदयिक भाव, जैसे – अज्ञान, गति, असिद्धत्व भाव के अतिरिक्त नामकर्म सम्बन्धी भाव बन्ध के कारण नहीं हैं। केवल मिथ्यात्व, असंयम, प्रमाद, कषाय और योग ही बन्ध के कारण हैं। पारिणामिक भाव बन्ध एवं मोक्ष की क्रिया से रहित हैं।

सूत्र में सर्वप्रथम औपशमिक भाव का ग्रहण है, क्योंकि सर्वप्रथम औपशमिक सम्यक्त्व ही होता है, तदनन्तर क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है। विशुद्धि की प्रकर्षता से युक्त होने के कारण औपशमिक भाव के बाद क्षायिक भाव का ग्रहण किया है। मिश्र भाव यानी क्षायोपशमिक भाव में कर्मों के एकदेश क्षय और एकदेश उपशम दोनों के मिश्र रूप होकर अलग प्रकार की विशुद्धि का कारण है, इसलिये क्षायिक भाव के बाद क्षायोपशमिक भाव को ग्रहण किया है। सूत्र के अन्त में औदयिक और फिर पारिणामिक भावों को ग्रहण किया गया है, क्योंकि यह दोनों भाव सभी संसारी जीवों में पाये जाते हैं। मध्य में 'मिश्र' शब्द के ग्रहण का प्रयोजन यह है कि भव्य जीवों के औपशमिक और क्षायिक के साथ मिश्र भाव भी होता है और अभव्यों के औदयिक और पारिणामिक के साथ मिश्र भाव होता है। इस प्रकार पूर्व और उत्तर दोनों ओर 'मिश्र' का सम्बन्ध हो जाता है।

ये पाँचों भाव ही आत्मा के स्वरूप – असाधारण भाव हैं, इसलिये इन्हें सूत्र में 'स्व–तत्त्व' कहा गया है। संसारी या मुक्त कोई भी आत्मा हो, उसकी पर्याय इन पाँच भावों में से किसी न किसी भाववाली ही होगी। अजीव में पाँचों भाव वाली पर्याय सम्भव नहीं है। इसलिये वे भाव अजीव के स्वरूप नहीं हैं। उक्त पाँचों भाव जीवों में एक साथ होने का नियम नहीं है। मुक्त जीवों में दो भाव होते हैं ह्न क्षायिक और पारिणामिक। संसारी जीवों में कोई तीन भाववाला, कोई चार भाववाला और कोई पाँच भाववाला होता है, पर दो भाववाला कोई नहीं होता। अर्थात् मुक्त आत्मा की पर्याय में दो भाव और संसारी आत्मा की पर्याय में तीन से लेकर पाँच भाव तक पाये जाते हैं। अतएव पाँचों भावों का स्वरूप जीव राशि की अपेक्षा से या किसी जीव विशेष की सम्भावना की अपेक्षा से कहा गया है।

Comments : Dispositions or the thought-activities of the soul are described in this Sūtra. These are of five kinds - Aupaśamika as a

result of subsidence of karmas, Kṣāyika due to destruction of karmas, Kṣāyopaśamika due to destruction-cum-subsidence of karmas, Audayika due to operation of karmas and Pāriṇāmika are independent of karmas or are natural.

The state is which the karmic matter does not manifest its power in a soul as a result of the prevailing Dravya (Substance), Kṣetra (Area), Kāla (Time) and Bhāva (Volition), it is termed as subsidence of karmas and the resulting disposition in the soul is known as subsidence disposition (Aupaśamika Bhāva). For example, just as mud settles down when cleaning nuts are put in water and water becomes clean, like-wise power of karmic matter not manifesting results in purity of thoughts in the soul. This is known as subsidence (Upaśama). Out of eight kinds of karmas, subsidence of only deluding karma (Mohanīya karma) takes place. Complete destruction of karmas is known as 'Kṣaya', like complete removal of mud from water in the earlier example. The disposition in the soul resulting from total destruction of karmas is known as destructional disposition (Kṣāyika Bhāva).

Present annihilation of future fruition of completely covering all destructive karmic molecules (Sarvaghātī Spardhaka) and subsequent subsidence of the same along with fruition of partially covering attributted group of karmic molecules (Deśaghātī Spardhaka) is known as destruction-cum-subsidence of karmas (Kṣayopaśama). It means that karmic molecules of all destructive nature transform in infinite times less power and get converted into partial covering of attributes and then manifest. The infinite times reduction in the power of manifestation of the all destructive covering karmic moleules is termed as their destruction and their modification into partially covering attributes is known as their subsidence. The combination of such destruction and subsidence is known as destruction-cum-subsidence. For example, some mud particles if present in the water in the example given above is a state of clean and unclean water. The disposition of the soul as a result of manifestation of destruction-cum-subsidences is known as Kṣāyopaśama Bhāva. It should be understood here that karmic molecules totally covering the attributes are called 'Sarvaghātī Spardhaka' and those which cover par-

tially are known as 'Deśaghātī Spardhaka'. The resulting disposition of soul on fruition of karmas on their due time is known as 'Audayika Bhāva'. The natural instinct or disposition of soul independant of manifestation of fruition of subsidence, destruction or destruction-cum-subsidence of karmas is known as 'Pāriṇāmika Bhāva'.

The disposition of soul arising from sensory knowledge, scriptural knowledge, clairvoyance and mind reading knowledge are due to manifestation of destruction-cum-subsidence of karmas. Manifestation of only omniscience is the result of destruction of karmas. Subsidence is only of Faith deluding karma. In such a subsidence, first of all is the subsidence of Wrong Faith (Faith deluding karma) resulting in manifestation of Right Faith karma. The resulting disposition is 'Aupaśamika Samyaktva Bhāva.' Three kinds of dispositions of soul - destruction-cum-subsidence, subsidence and destruction of karmas are causes for attainment of salvation. The dispositions resulting from fruition of karmas are causes for bondage. But all such dispositions do not always cause bondage as is the case of fruition of life-courses, classes of Jīvas etc. Only Wrong Faith, non-restraint (Avirati), non-carefulness (Pramāda), passions (Kaṣāya) and Yoga cause bondage. Dispositions resulting from natural instincts of the soul cause neither bondage nor salvation.

In this Sūtra subsidential disposition is mentioned first because first of all subsidential Right Faith manifests. Thereafter manifestation of destruction-cum-subsidence Right Faith and destructional Right Faith are attained. Taking into consideration the purity & intensity of disposition, mention is made of destructional disposition after subsidential disposition. In case of disposition resulting from destruction-cum-subsidence, there is a distinct class of purity having partial destruction and partial subsidence of karmas and therefore it is mentioned after destructional disposition. In the last, mention is made of dispositions arising out of fruition of karmas and natural instincts as both these are found in all mundane souls. The mixed state is mentioned in the middle as it has reference to the capacity of capable souls worthy for salvation (Bhavya Jīvas) who possess this disposition along with subsidential and destructive dispoition and non-capable ones (Abhavya Jīvas) pos-

sess this along with operational disposition and disposition resulting from natural instincts. Thus it connects both the forner & later ones.

All these five dispositions are distinguishing characteristics of souls only and therefore, in this Sūtra, these are termed as 'Sva-tattva'. All souls-mundane or liberated possess one or more of these dispositions. None of these five dispositions occur in insentients and therefore these are not the characteristics of insentients. There is no rule that all these five dispositions may manifest at a time. Liberated souls have only two dispositions - destructional and natural ones. In case of mundane souls, some may have three, four or five dispositions but no one will have two. That is, the liberated beings have two modes of dispositions and mundane beings from three to five. As such description of five kinds of dispositions has been stated here with reference to the possibility of all souls and also of a particular soul.

जीव के भावों के उत्तर भेद

Sub-kinds of dispositions of the Jīva

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ।।२।।

(द्वि-नव-अष्टादश-एकविंशति-त्रि-भेदाः यथा-क्रमम्।)

Dvinavāṣṭādaśaikaviṁśatitribhedā Yathākramam. (2)

शब्दार्थ : **द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदाः –** दो, नौ, अठारह, इक्कीस, तीन भेद; **यथाक्रमम् –** यथा क्रम से (जैसे पहले सूत्र में हैं)।

Meaning of Words : **Dvinavāṣṭādaśaikaviṁśatitribhedāḥ -** two, nine, eighteen, twenty-one, three kinds; **Yathākramam -** respectively.

सूत्रार्थ : उक्त पाँच भाव क्रम से दो, नौ, अठारह, इक्कीस और तीन भेदवाले हैं।

English Rendering : Above five kinds of disposition of Jīva are of two, nine, eighteen, twenty-one and three kinds respectively.

टीका : औपशमिक भाव के दो, क्षायिक भाव के नौ, मिश्र यानी क्षायोपशमिक भाव के अठारह, औदयिक भाव के इक्कीस और पारिणामिक भाव के तीन भेद हैं।

Comments : The sub-divisions of the disposition of the soul arising from subsidence volitions are of two kinds, from destructional are of nine kinds, from destruction-cum-subsidential are of eighteen kinds, arising on the fruition of karmas are of twenty-one kinds and those arising due to natural instincts are of three kinds.

औपशमिक भाव के भेद

Kinds of Subsidential disposition

सम्यक्त्वचारित्रे ।। ३ ।।

(सम्यक्त्व-चारित्रे।)

Samyaktvacāritre. (3)

शब्दार्थ : **सम्यक्त्वचारित्रे –** (उपशम) सम्यक्त्व और चारित्र।

Meaning of Words : **Samyaktvacāritre -** (subsidential) Right Faith and (subsidential) Right Conduct.

सूत्रार्थ : औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र – ये दो औपशमिक भाव के भेद हैं।

English Rendering : The two kinds of disposition due to subsidence of karmas are subsidential right faith and subsidential right conduct.

टीका : अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व एवं सम्यक् प्रकृति – इन सात प्रकृतियों (छह या पाँच प्रकृतियों) के उपशम से जो सम्यक्त्व होता है, उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। अनादि मिथ्यादृष्टि को पाँच और किसी-किसी सादि मिथ्यादृष्टि के अनन्तानुबन्धी की चार और एक मिथ्यात्व – इस प्रकार पाँच प्रकृतियों के या सम्यग्मिथ्यात्व सहित छह प्रकृतियों के उपशम से भी औपशमिक सम्यक्त्व होता है।

चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम से चारित्र का आविर्भाव होता है। चारित्र मोहनीय की पच्चीस प्रकृतियाँ हैं। इनमें अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण

और संज्वलन रूप प्रत्येक के क्रोध, मान, माया, लोभरूप कुल सोलह कषाय और नौ नो-कषाय (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद) - इस प्रकार कुल पच्चीस चारित्र मोहनीय सम्बन्धी प्रकृतियों का उपशम होता है। इसी प्रकार दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियों - मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति - इनका उपशम होने से अर्थात् मोहनीय कर्म की कुल अट्ठाइस प्रकृतियों के उपशम से आत्म-परिणामों की जो निर्मलता होती है, उसको औपशमिक चारित्र कहते हैं।

अनादि मिथ्यादृष्टि के जो प्रथम बार सम्यग्दर्शन होता है, वह उपशम सम्यग्दर्शन ही होता है, जो मिथ्यात्व प्रकृति और चार अनन्तानुबन्धी प्रकृतियों के उपशम से होता है। जो सादि मिथ्यादृष्टि हैं अर्थात् जिसको सम्यक्त्व होकर छूट गया है उसको जो उपशम सम्यक्त्व होता है, वह तीन प्रकार से होता है। जिस जीव के मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति - इन तीनों की सत्ता मौजूद है वह जीव तो इन तीनों का तथा अनन्तानुबन्धी कषायों सहित सात प्रकृतियों का उपशम करके उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है। जिस जीव के सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वेलना पूरी हो चुकी है वह शेष छह प्रकृतियों का तथा जिस जीव के सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति इन दोनों की उद्वेलना पूर्ण हो चुकी है वह पाँच प्रकृतियों का उपशम करके उपशम सम्यग्दृष्टि होता है। (जैसे, रस्सी के बटने में जो बल दिया था, पीछे उलटा घुमाने से वह बल निकाल दिया। इसी प्रकार जिस प्रकृति का बन्ध किया था, पीछे परिणाम विशेष से भागाहार के द्वारा अपकृष्ट करके उसको अन्य प्रकृति रूप परिणमा करके उसका नाश कर दिया, उसे उद्वेलन-संक्रमण कहते हैं।) इस प्रकार अनादि मिथ्यादृष्टि को पाँच का उपशम होकर उपशम सम्यक्त्व होता है और सादि मिथ्यादृष्टि को तीन तरह से - पाँच, छह या सात कर्म प्रकृतियों के उपशम से उपशम सम्यक्त्व होता है। ये प्रथमोपशम सम्यक्त्व के भेद हैं।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क कषाय की विसंयोजना (अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ को अन्य प्रकृति रूप अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण आदि बारह कषाय रूप और हास्य आदि नौ नो-कषाय रूप से परिवर्तित करना 'विसंयोजना' कहलाती है।) करके तथा दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियों का उपशम करने पर प्राप्त होता है। एक आचार्य के मतानुसार अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना के बिना, उनके केवल उपशम करने से भी द्वितीयोपशम सम्यक्त्व प्रगट होता है।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्वी उपशम श्रेणी चढ़ता है, अतः यह ग्यारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है। परन्तु प्रथमोपशम सम्यक्त्वी जीव उपशम श्रेणी नहीं चढ़ता है, अतः चौथे से सातवें गुणस्थान में ही रहता है। इस प्रकार यह उपशम या औपशमिक सम्यक्त्व का कथन है।

चारित्र मोहनीय सम्बन्धी इक्कीस कर्म प्रकृतियाँ – अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, प्रत्याख्यानावरण कषाय चार, संज्वलन कषाय चार तथा हास्य आदि नौ नो–कषायों के उपशम से पूर्णतः औपशमिक चारित्र ग्यारहवें गुणस्थान में होता है। अथवा, उपशम का प्रारम्भ उपशम श्रेणी में आठवें गुणस्थान में होता है, अतः आठवें से ग्यारहवें गुणस्थान तक भी कहा जाता है।

Comments : The disposition of the soul arising due to the subsidence of Anantānubandhī anger, pride, deceitfulness, greed and three kinds of faith deluding karma - Mithyātva (Wrong Belief), Samyagmithyātva (Mixed Right & Wrong Belief) and Samyaktva Prakṛti (Right Belief Prakṛti) - in all seven (six or five), is known as subsidence type of right belief. The subsidence type of right belief is manifested to the one possessing beginningless Wrong Faith (Anādi Mithyadṛṣṭī) or the one who has degraded from Right Faith (Sādi Mithyādṛṣṭī) by subsidence of four kinds of Anantānubandhī anger, pride, deceitfulness and greed and Mithyātva or subsidence of six kinds including the Samyagmithyātva as the sixth one.

The subsidence of conduct deluding karma results in the manifestation of subsidential type of conduct. There are twenty five kinds of conduct deluding karmas. These consist of four-anger, pride deceitfulness and greed each of Anantānubandhī, Aprtyākhyānāvaraṇa, Pratyākhyānāvaraṇa and Saṁjvalana types (in all sixteen kinds of passions) and nine quasipassions (No-kaṣāyas i.e. laughter, passionate attachment, haterade, sorrow, fear, disgust, sexual inclination for a man, sexual inclination for a woman and sexual inclination for both man & woman). Thus, in all there is subsidence of twenty-five kinds of karmas. Similarly there is subsidence of three kinds of faith deluding karmas - Mithyātva (Wrong Belief), Samyag-mithyātva (mixed both Right and Wrong Belief Prakṛti) and Samyaktva Prakṛti (Right Belief Prakṛti). The purity of disposition of the soul as a result of the subsidence of

these twenty-eight kinds of karma nature is known as subsidential right conduct. Such a complete right conduct is attained only by those who dwell in eleventh stage of spiritual development.

The Jīva possessing beginningless Wrong Faith (Anādi Mithyādṛṣṭi) at first attains only the subsidential type of right faith which is the result of the subsidence of Wrong Belief and four kinds of Anantānubandhī passions. The Jīvas who have already been degraded once from Right Faith (Sādi Mithyādṛṣṭi) i.e. those who have once given up Right Faith after attainment, attain subsidental right faith in three ways. The souls who have the existence of all the three natures (of faith deluding karma) i.e. Wrong Belief, Right & Wrong Belief and Right Belief Prakṛti, attains subsidential right faith by subsidence of these three natures and Anantānubandhī passions i.e. in all seven types of kārmic natures. Those souls who have completed 'Udvelanā' (transition of Kārmic nature) of Samyak Prakṛti, they attain subsidential Right Faith after subsidence of remaining six Prakṛtis and those who have completed 'Udvelanā' of Samyak Mithyātva and samyak Prakṛti, attain subidential Right Faith by subsidence of five prakṛtis. (A rope gets its strenght on twisting its fibres together and making them bound as one entity. If the same is untwisted, it looses its strength. Likewise when bondage of a particular nature with certain power of fruition was accomplished, the same could be converted into another type of nature by one's purity of thoughts and thereafter destroyed. This process is known as 'Udvelanā' or transition of kārmic nature). Above kinds are of 'Prathamopaśama Samyktva' (first subsidential right belief).

The second subsidential Right Belief (Dvitīyopaśama Samyaktva) is attained by transition of four Anantānubandhī passions (i.e. anger, pride, deceitfulness and greed) into other types of kārmic nature i.e. twelve kinds of Apratyākhyānāvaraṇa etc. types and nine quasi-passions is known as 'Visaṁyojanā' and subsidence of three kinds of faith deluding karma. According to one Ācārya, such second subsidential right belief is attained merely by subsidence of Anantānubandhī passions instead of their transition. As the one attaining second subsidential

right belief ascends the spiritual ladder of subsidence, it is found upto eleventh stage of spiritual development. As the first subsidential right believer does not ascend ladder, the same is attained by those who dwell in fourth to seventh stage of spiritual development. In this way, it is the description of subsidence or subsidential right belief.

The complete subsidential right conduct is attained only in the eleventh stage of spiritual development on subsidence of twenty-one karmic nature comprising of four each of Apratyākhyānāvaraṇa, Pratyākhyānāvaraṇa & Saṁjvalana and nine quasi-passions. Subsidential right conduct starts in the eighth stage of spiritual development and as such it is found upto 11th stage, i.e. from 8th to 11th stages.

क्षायिक भाव के भेद

Kinds of disposition arising out of Destruction of Karmas

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ।।४ ।।

(ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्याणि च।)

Jñānadarśanadānalābhabhogopabhogavīryāṇi Ca. (4)

शब्दार्थ : **ज्ञान –** (क्षायिक) ज्ञान; **दर्शन –** (क्षायिक) दर्शन; **दान –** (क्षायिक) दान; **लाभ –** (क्षायिक) लाभ; **भोग –** (क्षायिक) भोग; **उपभोग –** (क्षायिक) उपभोग; **वीर्याणि –** (क्षायिक) वीर्य; **च –** और (क्षायिक सम्यक्त्व एवं क्षायिक चारित्र)।

Meaning of Words : **Jñāna -** knowledge after destruction of knowledge deluding karmas; **Darśana -** Right faith after destruction of faith deluding karmas; **Dāna** - attainment of gift after destruction of donation obstructive karmas; **Lābha -** gain after destruction of gain obstructive karmas; **Bhoga -** bliss produced due to destruction of Bhoga (once enjoyment) obstructive karmas; **Upabhoga -** bliss produced due to destruction of Upabhoga (repeated enjoyment) obstructive karmas. **Vīryāṇi -** vitality gained after destruction of vitality obstructing karmas; **Ca -** and Right Faith and Right Conduct attained after destruction of deluding karmas.

सूत्रार्थ : क्षायिक भाव के नौ भेद हैं – क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र।

English Rendering : The nine kinds of disposition of soul after total destruction of destructive karmas are - infinite knowledge, infinite perception, infinite gift, infinite gain, infinite once-enjoyment, infinite repeated enjoyment, infinite vitality, infinite right faith and infinite right conduct.

टीका : ज्ञानावरणीय कर्म के पूर्ण क्षय होने से क्षायिक ज्ञान – केवलज्ञान होता है। दर्शनावरणीय कर्म के पूर्ण क्षय से क्षायिक दर्शन – केवलदर्शन होता है। दानान्तराय कर्म के पूर्ण क्षय से क्षायिक दान प्राप्त होता है। समस्त लाभान्तराय कर्म के पूर्ण क्षय होने से क्षायिक लाभ की प्राप्ति होती है। भोगान्तराय कर्म के पूर्ण क्षय हो जाने पर क्षायिक भोग की प्राप्ति होती है। उपभोगान्तराय कर्म के पूर्ण क्षय होने पर क्षायिक उपभोग की प्राप्ति होती है। वीर्यान्तराय कर्म के पूर्ण क्षय होने पर क्षायिक वीर्य की प्राप्ति होती है। दर्शन मोहनीय कर्म की तीन प्रकृतियों तथा चार अनन्तानुबंधी की प्रकृतियों के पूर्ण क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है और चारित्र मोहनीय कर्म के पूर्ण क्षय होने पर वीतराग चारित्र की प्राप्ति होती है।

जिस लाभ के बल से कवलाहार रहित केवलियों के शरीर के बलाधान में हेतु तथा जो अन्य जीवों में नहीं पाये जानेवाले असाधारण, परम शुभ और सूक्ष्म ऐसे अनन्त परमाणु प्रतिसमय सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं, वह क्षायिक लाभ है।

एक बार जो भोगा जावे, उसे भोग कहते हैं। क्षायिक भोग में गन्धोदक वृष्टि, पुष्प वृष्टि आदि होती हैं। जो बार–बार भोगा जावे, उसे उपभोग कहते हैं। क्षायिक उपभोग से छत्र, चामर, सिंहासन आदि विभूतियाँ प्राप्त होती हैं।

केवली भगवान् क्षायिक वीर्य के कारण केवलज्ञान और केवलदर्शन से सर्व द्रव्यों और उनकी समस्त पर्यायों को जानने और देखने में समर्थ होते हैं।

Comments : On the total destruction of the knowledge obscuring karmas, perfect knowledge or omniscience gets manifested. On to-

tal destruction of perception deluding karmas, perfect perception or omniperception gets manifested. On total destruction of gift obstructive karmas, arises power of giving security to all i.e. the gift of fearlessness. On complete destruction of gain-obstructive karmas, infinite gain is manifested. On complete destruction of once enjoyment obstructive karmas, infinite once enjoyment is attained. On total destruction of repeated enjoyment obstructive karmas, infinite repeated enjoyment is attained. On entire destruction of energy obstructive karmas, infinite energy is manifested. On complete destruction of three faith deluding karmas and four Anantānubandhī karmas infinite right faith gets manifested and on the complete destruction of conduct deluding karmas, right conduct is attained. The attainment of infinite gain causes intake of infinite particles of extremely pure and subtle matter which give strength and which are beyond the reach of ordinary human beings but on such destruction of karmas, omniscients need not take morsel food.

Things that can be enjoyed only once are termed as 'Bhoga'. For example, the marvels of the showers of flowers, showers of sacred fragrant water etc. Things that can be enjoyed repeatedly are known as 'Upabhoga'. For example the manifestation of the parasol, flywhisk, throne etc. and such other splendours.

As a result of the manifestation of infinite energy, omniscient is able to perceive and know all the Dravyas of the universe with all their modes at a time.

क्षायोपशमिक भाव के भेद

Kinds of disposition arising out of Destruction-cum-subsidence of Karmas

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः
सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ।।५।।

(ज्ञान-अज्ञान-दर्शन-लब्धयः चतुः-त्रि-त्रि-पञ्च-भेदाः
सम्यक्त्व-चारित्र-संयमासंयमाः च।)

Jñānajñānadarśanalabdhayaścatustritripañcabhedāḥ
Samyaktvacāritrasaṁyamāsaṁyamāśca. (5)

शब्दार्थ : **ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः –** चार (सम्यक्) ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन, पाँच लब्धियाँ (रूप) भेद; **सम्यक्त्वचारित्र–संयमासंयमाश्च –** और सम्यक्त्व, चारित्र और संयमासंयम (ये क्षायोपशमिक भाव के अठारह भेद हैं)।

Meaning of Words : **Jñānājñadarśanalabdhayaścatustritripañcabhedāḥ -** four (Right) Knowledges, three Wrong Knowledges, three perceptions and five attainments (are) kinds; **Samyaktvacāritrasaṁyamāsaṁyamāśca. -** and right belief, right conduct and partial controlled conduct (these are eighteen kinds of destruction-cum-subsidential dispositions).

सूत्रार्थ : क्षायोपशमिक भाव के अठारह भेद इस प्रकार हैं – चार सम्यग्ज्ञान – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान; तीन अज्ञान – कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधि (विभङ्ग) ज्ञान; तीन दर्शन – चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन एवं अवधिदर्शन; पाँच लब्धियाँ – दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य; क्षायोपशमिक सम्यक्त्व; क्षायोपशमिक चारित्र और संयमासंयम।

English Rendering : Eighteen kinds of destruction-cum-subsidential dispositions of a soul are - four kinds of Right Knowledge i.e. sensory knowledge, scriptural knowledge, clairvoyance and mind reading knowledge; three kinds of Wrong Knowledge - wrong sensory knowledge, wrong scriptural knowledge & wrong clairvoyance. Three kinds of perception - ocular perception, non-ocular and clairvoyance perception; five kinds of attainments - charity, gain, enjoyment of consumable objects, enjoyment of non-consumable objects and power; destructive-cum-subsidential right belief, destructive-cum-subsidential conduct and partially controlled restraint.

टीका : क्षायोपशमिक भाव की परिभाषा इसी अध्याय के प्रथम सूत्र की टीका में दी जा चुकी है। मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरण के क्षयोपशम से क्रमशः मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान का आविर्भाव होता है। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायों के सद्भाव में मति–अज्ञान, श्रुत–अज्ञान और विभङ्गज्ञान होता है। चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और

अवधिदर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम से क्रमशः चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन का आविर्भाव होता है। अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य लब्धियों का आविर्भाव होता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्क तथा दर्शनमोहनीय के क्षयोपशम से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का आविर्भाव होता है।

अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कषाय रूप बारह कषायों के उदयाभावी क्षय होने से और इन्हीं के सदवस्थारूप उपशम होने से तथा चार संज्वलन कषायों में किसी एक देशघाती प्रकृति के उदय होने पर और नौ नो-कषायों का यथास्थान उदय होने पर जो संसार से पूरी निवृत्तिरूप परिणाम होता है, वह क्षायोपशमिक चारित्र है। अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानावरण कषाय रूप आठ कषायों के उदयाभावी क्षय होने से और उन्हीं के सदवस्था रूप उपशम होने से तथा प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय और चार संज्वलन कषायों के तथा नौ नो-कषायों में से यथायोग्य प्रकृतियों के सर्वघाती स्पर्धकों का उदय-क्षय होने से और उन्हीं के देशघाती स्पर्धकों का उदय होने पर जो विरताविरत रूप परिणाम होता है, वह संयमासंयम कहलाता है।

Comments **:** The definition of disposition arising from manifestation of destruction-cum-subsidence of karmas has already been given under comments of Sūtra one. The disposition of sensory knowledge, scriptural knowledge, clairvoyance and mind reading knowledge arises due to corresponding destruction-cum-subsidence of sensory knowledge obstructive karmas, scriptural knowledge obstructive karmas, clairvoyance obstructive karmas and mind-reading knowledge obstructive karmas. As a result of presence of wrong faith coupled with Anantānubandhī passions, manifestation of wrong sensory knowledge, wrong scriptural knowledge and wrong clairvoyance take place. The destruction-cum-subsidence of ocular perception deluding karma, non-ocular perception deluding karma and clairvoyance perception deluding karma result in manifestation of ocular preception, non-ocular perception and clairvoyance perception respectively. The destruction-cum-subsidence of five kinds of obstructive karmas result in manifestation of power of gift, gain, once-enjoyment, repeated enjoyment and attainment of energy respectively. Destruction-cum-subsidence Right faith is manifested

as a result of destruction-cum-subsidence of four kinds of Anantānubandhī passions and faith deluding karmas.

The destruction of fruition in future of twelve kinds of passions of Anantānubandhī, Apratyākhyānāvaraṇa and Pratyākhyānāvaraṇa and subsequent supression of the same and rise of only one of the four kinds of passions of Saṁjvalana variety having quality of partial obscuring and rise of possible nine kinds of quasi-passions, the disposition of having total detachment from mundane affairs is the destruction-cum-subsidential conduct. (Udayābhavīkṣaya means rise of all destructive karma molecules in extremely diminished feeble potency because of their transformation into partial destructive karmas and Sadavasthārūpa Upaśama means existence of karma molecules in supressed stage.) The destruction of fruition of eight kinds of passions of Anantānubandhī and Apratyākhyānāvaraṇa types and their subsequent subsidence and destruction of totally obscuring karma particles of four Saṁjvalana passions and nine varieties of quasi-passions and rise of partially obscuring karmas of these, the disposition arising out vows and vowlessness is called Saṁyamāsaṁyama or partial restraint conduct.

औदयिक भाव के भेद

Kinds of Disposition arising out of Fruition of Karmas

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकै-कैकैकषड्भेदाः ।।६।।

(गति-कषाय-लिङ्ग-मिथ्यादर्शन-अज्ञान-असंयत-असिद्ध-लेश्याः चतुः-चतुः-त्रि-एक-एक-एक-एक-षट्भेदाः।)

Gatikaṣāyaliṅgamithyādarśanājñānāsaṁyatāsiddha-leśyāścatuścatustryekaikaikaikaṣaḍbhedāḥ. (6)

शब्दार्थ : **गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याः –** गति, कषाय, लिङ्ग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयत, असिद्ध और लेश्या; **चतुश्चतुस्त्र्येकै-कैकैकषड्भेदाः –** (क्रमशः) चार, चार, तीन, एक, एक, एक, एक और छह भेद (औदयिक भाव के हैं)।

Meaning of Words : **Gatikaṣāyaliṅgamithyādarśanājñānāsaṁyatāsiddhaleśyāḥ -** life courses, passions, sex inclination, wrong faith, wrong knowledge, non-restraint, non-attainment of liberation and psychical colouration; **Catuścatustryekaikaikaikaṣaḍbhedāḥ -** four, four, three, one, one, one, one and six kinds (respectively).

सूत्रार्थ : औदयिक भाव के इक्कीस भेद हैं – चार गति, चार कषाय, तीन लिङ्ग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयत, असिद्धत्व और छह लेश्यायें।

English Rendering : The twenty-one kinds of disposition as a result of fruition of karmas are - four life-courses, four passions, three kinds of sex-inclinations, wrong faith, wrong knowledge, non-restraint, non-attainment of liberation and six kinds of psychical colouration (Leśyas).

टीका : कर्मों के उदय के फलस्वरूप आत्मा के जो भाव होते हैं, वे औदयिक भाव कहलाते हैं।

गति नामकर्म के उदय में चार गतियाँ होती हैं – नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। कषाय – मोहनीय कर्म के उदय में चार कषाय उत्पन्न होती हैं – क्रोध, मान, माया और लोभ। वेद नामक मोहनीय कर्म के उदय में तीन वेद – स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेद होते हैं। मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादर्शन (तत्त्व का अश्रद्धान) होता है। ज्ञानावरणीय कर्म के उदय में अज्ञान अर्थात् पदार्थों को नहीं जानना अज्ञान है। असंयत भाव (व्रतों का सर्वथा अभाव) चारित्र मोहनीय कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के उदय का परिणाम है। असिद्धत्व सामान्य कर्मोदय की अपेक्षा से होता है। कृष्ण, नील, कापोत, तेजस् (पीत), पद्म और शुक्ल – ये छह लेश्यायें कषाय के उदय से हैं। इस प्रकार ये इक्कीस औदयिक भाव के भेद हैं।

लेश्या के दो भेद हैं – द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या। यहाँ जीव के भावों का अधिकार होने से भाव लेश्या ही ली गई है। कषाय के उदय से अनुरञ्जित योग की प्रवृत्ति रूप भाव लेश्या औदयिक है। उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगकेवली – इन तीन गुणस्थानों में भूतपूर्व नय की अपेक्षा से लेश्या कही जाती है। अर्थात् इन

तीन गुणस्थानों में कषायोदय नहीं है, किन्तु योग है। जो योग पहले कषायोदय से संयुक्त था, वह यहाँ पर मात्र योग है। इसलिये यहाँ उपचार से इन गुणस्थानों में शुक्ल लेश्या कही गई है।

असञ्ज्ञित्व भाव का अज्ञान भाव में और अदर्शन भाव का मिथ्यादर्शन में अन्तर्भाव होता है। तीन लिङ्ग के ग्रहण से हास्य आदि छह नो-कषायों का उपलक्षण से ग्रहण कर लिया है। सम्पूर्ण अघातिया कर्मों के उदय से होने वाले सभी औदयिक भावों का सङ्ग्रह गति ग्रहण रूप उपलक्षण से हो जाता है।

Comments : The disposition of the soul as result of fruition of karmas is known as 'Audayika Bhāva'.

On fruition of life-course Nāma karma, there are four states of existence - hell, Tiryañca, human and celestial states. Passions - four kinds of passions - anger, pride, deceitfulness and greed arise due to fruition of deluding karmas. Sex-inclination - three sex-inclinations - inclination for woman, inclination for man and inclination for both man & woman, i.e. characteristics of both the sexes are combined (Neuter) arise as a result of fruition of sex-deluding karma. Wrong Faith - (Wrong Belief of Realities) arise due to fruition of wrong faith karma. Fruition of knowledge deluding karma results in not attaining true knowledge of Realities i.e. it is either lack of knowledge or ignorance. Vowlessness (total absence of keeping vows) is due to rise of totally covering Spardhakas of conduct deluding karmas. Rise of state of non-liberation is due to general fruition of karmas. The six types of (psychical) colouration e.g. black, blue, grey, yellow, pink and white - are due to manifestation of passions. These are thus twenty-one kinds of 'Audayika Bhāva'.

Leśyā i.e. colouration is of two kinds - Dravya Leśyā (material colouration) and Bhāva Leśyā (psychic colouration). In this Sūtra, the description is related to the disposition of the soul, as such the context here is of psychical colouration. As psychical colouration is caused by manifestation of passions and activity due to Yoga. In confirmity of such a manifestation, the psychical colouration is a result of fruition of karmas. The colouration of those who dwell in the three stages of spiritual development - Upaśānta-Kaṣāya (subsided passions), Kṣīṇakaṣāya (destroyed passions) and Sayogakevalī (embodied omni-

scient) is said to be on the basis of their previous dispositions. That is, in these three stages, there is no rise of passions but only Yoga still subsits. The Yoga, which was earlier coupled with manifestation of passions, is in these stages breft of such passions. As such only conventionally in these stages, the psychical colouration is described as white.

The disposition arising from mindlessness state gets included in the disposition due to ignorance or lack of knowledge and that of Wrong-Faith in disposition due to non-faith. The manifestation of remaining six quasi-passions is supposed to have been included in the three sex-inclinations. The disposition arising out of the fruition of all non-destructive karmas (Aghātiyā karmas) has been included due to manifestation of the condition of existence (Gati) Nāma karma.

पारिणामिक भाव के भेद
Kinds of Natural Disposition

जीवभव्याभव्यत्वानि च ।।७।।

(जीव-भव्य-अभव्यत्वानि च।)

Jīvabhavyābhavyatvāni Ca. (7)

शब्दार्थ : **जीवभव्याभव्यत्वानि च –** जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व।

Meaning of Words : **Jīvabhavyābhavyatvāni Ca. -** consciousness, capability for liberation and incapability for liberation.

सूत्रार्थ : जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व – ये तीन पारिणामिक भाव हैं।

English Rendering : The three kinds natural dispositions of the soul are - consciousness, capability for liberation and incapability for liberation.

टीका : इस सूत्र में उन्हीं तीन पारिणामिक भावों का उल्लेख है जो जीव के ही स्वभाव हैं, अन्य द्रव्यों में ये नहीं पाये जाते। सूत्र में 'च' शब्द के प्रयोग से उन पारिणामिक भावों की ओर भी इंगित किया गया है, जो अन्य द्रव्यों में पाये जाते हैं तथा जीव में भी पाये जाते हैं। ऐसे भाव हैं – अस्तित्व, अन्यत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, गुणत्व, प्रदेशत्व आदि।

कई अन्य ग्रन्थों में जीवत्व भाव को औदयिक भाव भी कहा गया है, क्योंकि आयु आदि प्राणों को धारण करना जीवन है। वह अयोगकेवली के अन्तिम समय से आगे नहीं पाया जाता। इससे मालूम पड़ता है कि जीवत्व पारिणामिक भाव नहीं है, किन्तु वह कर्म के विपाक से उत्पन्न होता है, क्योंकि जो जिसके सद्भाव और असद्भाव का अविनाभावी होता है, वह उसका है, यह सिद्ध होता है। परन्तु इस सूत्र में जो जीवत्व को पारिणामिक भाव कहा है, वह प्राणों को धारण करने की अपेक्षा नहीं, बल्कि चैतन्य गुण की अपेक्षा से कहा है।

जिसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भाव प्रगट होने की योग्यता है, वह भव्य कहलाता है और जिसके वह योग्यता नहीं होती, वह अभव्य है। भव्य जीव तीन प्रकार के होते हैं - आसन्न भव्य, दूर भव्य और अभव्य-सम भव्य।

जो जीव 'केवली भगवान् का सुख सर्व सुखों में उत्कृष्ट है', इस वचन में श्रद्धा रखते हैं और उसी भव से या अगले दो-तीन भव से यानी अल्प काल में मुक्त होंगे, वे 'आसन्न भव्य' हैं। जो बहुत काल में मुक्त होंगे, वे 'दूर भव्य' हैं। मुक्त होने की योग्यता होने पर भी जो कभी मुक्त नहीं होंगे, वे 'अभव्य-सम भव्य' हैं।

पारिणामिकत्व के लिये कर्मों के उदय, उपशम, क्षय या क्षयोपशम की अपेक्षा नहीं होती, क्योंकि कर्मों के उदय आदि के निमित्त से आत्मा अभव्य या भव्य नहीं कहलाती, अपितु कर्मों के उदय आदि के बिना मात्र द्रव्य की स्वभावभूत अनादि पारिणामिकी शक्ति से ही आविर्भूत ये भाव पारिणामिक हैं।

Comments : The three inherent dispositions of the soul and not found in any other substance have been described in this Sūtra. The word 'Ca' used in the Sūtra is indicative of those natural dispositions of the soul which are also found in other substances. Such dispositions are having existence, permanence, doer, enjoyer, possesser of qualities, space points etc.

In several scriptures, state of consciousness (Jīvatva) has been described as 'Audayika Bhāva' because to possess vitalities like respiration etc. is to have life. It is not found in omniscients without Yoga beyond their last moment. This infers that state of consciousness (Jīvatva) is not a natural disposition but is the result of fruition of karmas

because that which is having mutual relationship proves the existence of that or otherwise. But the mention of Jīvatva as a natural disposition described here is not in the centext of possession of vitalities but in relation to the virtue of consciousness.

The soul that is capable of attaining right faith, right knowledge and right conduct is called 'Bhavya'. Those who do not possess this capability are called 'Abhavya'. 'Bhavya' souls are of three kinds - supreme souls to get liberation shortly, Wrong Believers who may attain liberation after a very long time in future and 'Bhavyas' similar to 'Abhavyas' who would never get a chance of liberation.

Those souls who have firm belief in the sermon of the omniscient that the bliss enjoyed by the omniscient is supreme most, unparallel having infinite happiness, may attain salvation shortly i.e. in the same life-course or after next two or three life-courses, are called 'Āsanna Bhavyas'. Those who will attain salvation after a long time are 'Dūra Bhavyas'. Those who will never attain liberation, although they have capabilities are 'Abhavya-sama Bhavyas'.

The natural dispositions are independent of the rise, subsidence, destruction or destruction-cum-subsidence of karmas because rise, subsidence, destruction or destruction-cum-subsidence of karmas are not the instrumental cause for being 'Bhavya' or 'Abhavya' but these are the inherent dispostions of the soul resultant of natural attributes of the Jīva-substance.

जीव का लक्षण

Distinguishing Feature of a Soul

उपयोगो लक्षणम् ।।८।।

(उपयोगः लक्षणम्।)

Upayogo Lakṣaṇam. (8)

शब्दार्थ : **उपयोगः** – उपयोग; **लक्षणम्** – पहचान (है)।

Meaning of Words : **Upayogaḥ -** Functional consciousness/ attention; **Lakṣaṇam -** distinguishing feature.

सूत्रार्थ : उपयोग जीव का लक्षण है।

English Rendering : The distinguishing feature of the soul is its functional consciousness or attentiveness.

टीका : जीव, जिसे आत्मा या चेतन भी कहते हैं, अनादि-सिद्ध स्वतन्त्र द्रव्य है। तात्त्विक दृष्टि से अरूपी होने से उसका इन्द्रियों द्वारा ज्ञान नहीं हो सकता, परन्तु स्व-संवेदन, प्रत्यक्ष तथा अनुमान आदि से उसका ज्ञान हो सकता है। तथापि सामान्य जिज्ञासुओं के लिए एक ऐसा लक्षण बतला देना उचित है, जिससे आत्मा की पहचान हो सके। इसी अभिप्राय से इस सूत्र में जीव का लक्षण बतलाया गया है। आत्मा लक्ष्य (ज्ञेय) है और उपयोग लक्षण (जानने का उपाय) है। जगत् अनेक जड़ एवं चेतन पदार्थों का नाम है। उसमें से जड़ और चेतन का विवेकपूर्वक निश्चय उपयोग के द्वारा ही होता है, क्योंकि ज्ञान एवं दर्शन रूप उपयोग तारतम्य भाव से सभी आत्माओं में अवश्य होता है।

लक्षण के दो प्रकार हैं - आत्मभूत और अनात्मभूत। जो वस्तु के स्वरूप से मिला हुआ हो, उसे आत्मभूत लक्षण कहते हैं। जैसे, उष्णता अग्नि का आत्मभूत लक्षण है। जो वस्तु के स्वरूप से मिला हुआ न हो अपितु उससे पृथक् हो, उसे अनात्मभूत लक्षण कहते हैं। जैसे, दण्डी पुरुष का दण्ड।

उपयोग आत्मा का आत्मभूत लक्षण है, क्योंकि शरीर और आत्मा में बन्ध की दृष्टि से परस्पर एकत्व होने पर भी ज्ञान आदि उपयोग उसका भेदक आत्मभूत लक्षण है।

Comments : Jīva, also called as soul or consciousness is an independant substance since beginningless times. From a self-proven point of view, it being formless, cannot be grasped with the aid of sense-organs, but can be perceived through self-experience, direct knowledge and inference etc. But for common persons who are eager to know, it is appropriate to state a characteristic which can establish, the identity of the soul. From this point of view, the characteristic of the soul is described in this Sūtra. The soul is a recognizable object and 'Upayoga' or active consciousness is its salient characteristic i.e. the means of knowing that object. This universe is a mixture of several kinds of insentient and sentient substances. The vivacious distinction

between these two can be done only through the active consciousness because active consciousness in the form of knowledge and perception is invariably found in varying degree of disposition among all souls.

The distinguishing features of disposition are of two kinds - integral virtue and non-integral virtue. That which is integral part of a thing is known as its integral virtue. For example, heat is an integral virtue of fire. That which is not an integral part of a thing but is separate is known as non-integral virtue. For example, the stick of a stick-bearer.

The active consciousness i.e. Upayoga of a soul is an integral virtue; although the soul and corporeal body are mutually one from bondage point of view, yet the active consciousness in the form of knowledge etc. is as an integral virtue having distinguishing charactiristic of a soul.

उपयोग के भेद
Kinds of Active Consciousness

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ।।९।।

(सः द्विविधः अष्ट-चतुः-भेदः।)

Sa Dvividho(a)ṣṭacaturbhedaḥ. (9)

शब्दार्थ : **सः –** वह (उपयोग); **द्विविधः –** दो प्रकार; **अष्ट–चतुर्भेदः –** आठ और चार भेदवाला (होता है)।

Meaning of Words : **Saḥ -** that (consciousness); **Dvividhaḥ -** (of) two kinds; **Aṣṭacaturbhedaḥ -** (is) of eight and four kinds.

सूत्रार्थ : वह उपयोग दो प्रकार का है। उसके आठ और चार भेद हैं।

English Rendering : That consciousness (Upayoga) is of two kinds; (that again) is of eight and four kinds.

टीका : सभी जीवों में चेतना एक समान होने पर भी जानने की क्रिया (बोध–व्यापार या उपयोग) क्षयोपशम की तरतमता के कारण सब आत्माओं में समान नहीं

होती। उपयोग की इस विविधता का कारण है बाह्य एवं आभ्यन्तर कारण-कलापों की विविधता। विषय भेद, इन्द्रिय आदि साधन भेद, देश तथा काल भेद इत्यादि बाह्य सामग्री की विविधता है। आवरण की तीव्रता-मन्दता का तारतम्य आन्तरिक सामग्री की विविधता है। इस सामग्री वैविध्य के कारण एक आत्मा भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न प्रकार की बोध-क्रिया करती है और अनेक आत्मायें एक ही समय में भिन्न-भिन्न बोध-क्रियायें करती हैं। बोध की यह विविधता अनुभवगम्य है। इसको संक्षेप में वर्गीकरण द्वारा बतलाना ही इस सूत्र का उद्देश्य है।

उपयोग के सामान्य से दो भेद किये गये हैं - साकार और अनाकार। विशेष रूप से साकार उपयोग के आठ और अनाकार उपयोग के चार भेद किये गये हैं। साकार उपयोग के आठ भेद हैं - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधि (विभङ्ग)-ज्ञान। अनाकार उपयोग के चार भेद हैं - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

जो वस्तु को विशेष रूप से जानता है वह साकार उपयोग है। इसे ज्ञानोपयोग भी कहते हैं। जो वस्तु को सामान्य रूप से विषय करने वाला है, वह अनाकार उपयोग है। इसे दर्शनोपयोग भी कहते हैं। केवलज्ञान और केवलदर्शन पूर्ण विकसित चेतना के व्यापार हैं और शेष सब अपूर्ण चेतना के व्यापार हैं।

ज्ञान के आठ भेदों की टीका प्रथम अध्याय के सूत्र 9 से 31 तक की जा चुकी है। दर्शन के चार भेदों का स्वरूप इस प्रकार है -

1. चक्षुदर्शन – ज्ञान के पूर्व जो सामान्य अवलोकन चक्षु इन्द्रिय से होता है, वह चक्षुदर्शन है।

2. अचक्षुदर्शन – ज्ञान के पूर्व जो सामान्य अवलोकन चक्षु इन्द्रिय के अलावा शेष अन्य इन्द्रियों और मन से होता है, उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं।

3. अवधिदर्शन – अवधिज्ञान के पूर्व जो सामान्य आभास होता है, उसे अवधिदर्शन कहते हैं।

4. केवलदर्शन – केवलज्ञान के साथ जो दर्शन होता है, उसे केवलदर्शन कहते हैं।

केवलज्ञान और केवलदर्शन एक साथ होते हैं, लेकिन चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन रूप सामान्य अवलोकन उस-उस ज्ञान विशेष के पूर्व होता है। यहाँ हम

यह देखते हैं कि मनःपर्ययज्ञान के पूर्व जो सामान्य आभास होता है, वहाँ किसी प्रकार का दर्शन नहीं बतलाया गया है। मनःपर्ययज्ञान से पहले ईहा-मतिज्ञानपूर्वक स्वयं के या दूसरे के मन में स्थित विचारों एवं पदार्थों को जाना जाता है। इसलिये इस ज्ञान के पूर्व दर्शन नहीं होता। इसी प्रकार श्रुतज्ञान भी मतिज्ञानपूर्वक ही होता है, इसलिये उसके पूर्व भी दर्शन नहीं होता।

Comments : Although the nature of consciousness is the same amongst all the souls, but due to varying degree of manifestation of destruction-cum-subsidence of karmas, the activity of knowing (i.e. manifestation of knowledge or active consciousness), is not similar. The reasons for such a variation are external & internal group of casuses. External causes are differences in action, differences is subjects, differences in having sense-organs of varying capacities, different areas and times etc. The internal causes are varying degree of obscuring karmas. Because of these differences a soul has different knowledge activities at different times and many souls have differently knowledge activities at the same time. This attainment of differing degree of knowing is being experienced and the purpose of this Sūtra is to describe the same in brief by grouping them.

In general active consciousness is divided into two as Sākāra and Anākāra. In detail, Sākāra i.e. conscious knowledge is of eight kinds and Anākāra i.e. indefinite conscious attentiveness is of four kinds. The eight kinds of Sākāra Upayoga are sensory knowledge, scriptural knowledge, clairvoyance, mind reading knowledge, omniscience, wrong sensory knowledge, wrong scriptural knowledge and wrong clairvoyance. Anākāra Upayoga is of four kinds as ocular perception, non-ocular perception, clairvoyance perception and omni-perception.

The detailed knowledge of an object is Sākāra Upayoga. It is also known as Jñānopayoga (knowledge active consciousness). General inkling without details about an object is 'Anākāra Upayoga'. It is also called 'Darśanopayoga' (Inkling active consciousness). The omniscience and omniperception are the activities of the fully developed pure consciousness and the remaining ones are the activities of under-developed inpure consciousness.

The detailed description of eight kinds of knowledge is given under comments of chapter one Sūtras 9 to 31. Brief description of four kinds of perception is as follows -

1. Ocular Perception - Prior to the attainment of Knowledge, mere/general/cursory inkling attained with the aid of ocular sense organ is ocular perception.

2. Non-ocular Perception - Prior to the attainment of knowledge mere inkling attained with the aid & support of all other sense-organs & mind except eyes is known as non-ocular perception.

3. Clairvoyance Perception - Mere inkling attained prior to clairvoyance is known as clairvoyance perception.

4. Omni-perception - Inkling accompanied with the omni-science is known as omni-perception.

Omniscience and omniperception occur simultaneously but ocular perception, non-ocular perception & clairvoyance perception occur prior to the manifestation of the corresponding knowledge. We notice here that no perception is mentioned prior to the manifestation of mind-reading knowledge. With the support of mind reading knowledge, we are able to know the thoughts of others' mind or of our own mind after manifestation of Īhā Matijñāna (conceptional sensory knowledge) and therefore no separate perception occurs before the manifestation of this knowledge. Similarly the scriptural knowledge gets manifested after manifestation of sensory knowledge and as such there does not occur separate perception prior to its manifestation.

जीवों के भेद

Kinds of Jīvas

संसारिणो मुक्ताश्च ।।१०।।

(संसारिणः मुक्ताः च।)

Saṁsāriṇo Muktāśca. (10)

शब्दार्थ : **संसारिणः** – संसारी; **मुक्ताः च** – और मुक्त।

Meaning of Words : **Saṁsāriṇaḥ -** mundane beings; **Muktaḥ Ca -** and liberated beings.

सूत्रार्थ : जीव दो प्रकार के हैं – संसारी और मुक्त।

English Rendering : Jīvas are of two kinds - mundane beings and liberated beings.

टीका : संसार का अर्थ है भ्रमण करना। उसी को परिवर्तन कहते हैं। परिवर्तन पाँच प्रकार का होता है – द्रव्य परिवर्तन, क्षेत्र परिवर्तन, काल परिवर्तन, भव परिवर्तन और भाव परिवर्तन। कर्म और नो–कर्म पुद्गलों को क्रमानुसार ग्रहण करने और भोग कर छोड़ देने रूप परिभ्रमण का नाम द्रव्य परिवर्तन है। लोकाकाश के सब प्रदेशों में क्रमानुसार उत्पन्न होने और मरण रूप परिभ्रमण का नाम क्षेत्र परिवर्तन है। क्रमवार उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के सब समयों में जन्म लेने और मरने रूप परिभ्रमण का नाम काल परिवर्तन है। नरक आदि गतियों में बार–बार उत्पन्न होकर जघन्य से उत्कृष्ट पर्यन्त सब आयु को भोगने रूप परिभ्रमण का नाम भव परिवर्तन है। इतना विशेष है कि देवगति में इकतीस सागरोपम तक ही आयु भोगनी होती है। सब योग स्थानों और कषाय स्थानों के द्वारा क्रम से ज्ञानावरण आदि सब कर्मों को जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट स्थिति को भोगने रूप परिभ्रमण को भाव परिवर्तन कहते हैं। संक्षेप में यह पाँच परिवर्तनों का निर्देश मात्र है। इस पञ्च परिवर्तन रूप संसार से जो जीव छूट जाते हैं, वे मुक्त कहलाते हैं। संसारी जीव ही मुक्त जीव होते हैं, इसलिये सूत्र में संसारी को पहले रखा है।

सूत्र में 'च' शब्द का उपयोग संसारी जीवों में उपयोग की मुख्यता बताने और मुक्त जीवों में उपयोग की गौणता बताने के लिये किया गया है। संसारी जीवों का उपयोग बदलता रहता है। अतः जैसे एकाग्रचिन्ता निरोध रूप ध्यान छद्मस्थों में मुख्य है, केवली में तो उसका फल कर्मध्वंस देखकर वह उपचार से ही माना जाता है। उसी तरह संसारियों में पर्यायान्तर होने से उपयोग मुख्य है, मुक्त जीवों में सतत एक–सी धारा रहने से गौण है।

Comments : 'Saṁsāra' means transmigration or cycle of wandering. That is also known as 'change'. Such a whirling-round is of five

kinds - Dravya Parivartana (cycle of matter), Kṣetra Parivartana (cycle of space), Kāla Parivartana (cycle of time), Bhava Parivartana (cycle of life-courses) and Bhāva Parivartana (cycle of thoughts or emotions). The cycle of accumulating kārmic and quasi-kārmic particles in a particular order and casting them off after enjoyment is known as Dravya Parivartana. To be born and to die in every space-point of universe (Lokākāśa) in a sequential order is known as Kṣetra Parivartana. To be born and to die in all 'Samayas' of both ascending and descending cycles of time is known as Kāla Parivartana. To be born in all the life-courses like hell etc. with minimum and maximum life-times repeatedly is called Bhava Parivartana. It is however to be noted specially here that the maximum life-time that is possible for celestial beings is 31 Sāgaropama. To have all kinds of dispositions arising from the fruition of karmas having all the states of mildness, the medium and intense of knowledge obscuring karmas etc. with all kinds of places of Yoga and passions is Bhāva Parivartana. In brief, this is only an indication of five kinds of cycles. Those souls who become free from these five kinds of wanderings of this Saṁsāra are known as Liberated Beings. Since only the mundane beings become liberated beings, the mundane beings have been mentioned first in this Sūtra.

The word 'Ca' used in this Sūtra is to high-light the importance of active consciousness (Upayoga) in mundane beings and to be of secondary importance in liberated beings. The active consciousness of mundane beings continues & undergoes changes. Therefore to have single minded meditation free from all worries is of prime importance for 'Chadmastha' (Beings up to 12th stage of spiritual development), the same is accepted conventionally for omniscients as the result of the same is to annihilate the karmas. Similarly due to the nature of changing modes, the active consciousness of mundane beings is of primary importance. In the liberated beings this active consciousness remains constant all the time.

संसारी जीवों के भेद
Kinds of Mundane beings

समनस्कामनस्काः ।।११।।

(समनस्क-अमनस्काः।)

Samanaskāmanaskāḥ. (11)

शब्दार्थ : **समनस्क-अमनस्काः** – मन सहित या सञ्ज्ञी एवं मन रहित या असञ्ज्ञी।

Meaning of Words : **Samanaska-Amanaskāḥ -** with mind or capable of discrimination and without mind or incapable of discrimination.

सूत्रार्थ : संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं – मन सहित (सञ्ज्ञी) और मन रहित (असञ्ज्ञी)।

English Rendering : Mundane souls are of two kinds - those having mind (with power of discrimination) and those without mind (incapable of discrimination).

टीका : जो जीव मन के द्वारा/कारण हित में प्रवृत्त होने की अथवा अहित से दूर रहने की शिक्षा ग्रहण कर सकता है, वह सञ्ज्ञी है। जो हित-अहित की शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलाप आदि को ग्रहण नहीं कर सकता, वह असञ्ज्ञी है। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक जीव नियम से असञ्ज्ञी ही होते हैं। पञ्चेन्द्रिय में मात्र तिर्यञ्च ही सञ्ज्ञी और असञ्ज्ञी दोनों प्रकार के होते हैं। शेष नारकी, मनुष्य और देव नियम से सञ्ज्ञी ही होते हैं।

मन दो प्रकार का होता है – द्रव्य मन और भाव मन। पुद्गल द्रव्य के मनोवर्गणा नामक स्कन्धों से बना हुआ जो आठ पाँखुड़ियोंवाला, खिले हुए कमल के आकार रूप मन हृदयस्थान में है, वह द्रव्य मन है। वह सूक्ष्म पुद्गल स्कन्ध होने से इन्द्रियग्राही नहीं है। आत्मा में विशेष प्रकार का क्षयोपशम होना भाव मन है। उससे जीव शिक्षा ग्रहण करने, क्रिया को समझने, उपदेश तथा आलाप आदि के योग्य होता है।

द्रव्य मन की उत्पत्ति पुद्गल विपाकी अङ्गोपाङ्ग नामकर्म के उदय से होती है। वीर्यान्तराय और नो-इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा रखने वाली आत्मा

की विशुद्धि को भाव मन कहते हैं। सञ्ज्ञी जीवों के भाव मन के योग्य निमित्त रूप वीर्यान्तराय तथा मन/नो-इन्द्रियावरण नामक ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम स्वयं होता है।

जीवों के विचार आदि क्रिया में भाव मन उपादान है और द्रव्य मन निमित्त मात्र है। भाव मन वाले प्राणी ही मोक्ष सम्बन्धी उपदेश के योग्य हैं।

Comments : The soul capable of discriminating between acts of welfare and non-welfare using his faculty of mind and receiving lessons is called 'Sañjñī' and he who is not capable of recieving lessons or preaching with regard to his welfare and non-welfare and is not capable of interaction etc. is called 'Asañjñī'. Jīvas possessing one sense organ to four sense organ are as a rule, 'Asañjñī'. Only Tiryañcas having five sense organs are both Sañjñī and Asañjñī. All others - hellish beings, human beings and celestial beings, as a rule, are 'Sañjñī'.

Mind is of two kinds - Dravya Mana (physical mind) and Bhāva Mana (psychical mind). Physical mind is made of matter particles of Manovargaṇās in the shape of fully blossomed lotus having eight petals located at the position of heart. These matter particles being subtle, can not be seen with the aid of sense organs. The state of special kind of purity of thoughts of the soul is Bhāva Mana or psychical mind. That makes the soul capable to receive education, to understand the activities, to receive preachings and to interact with others etc.

The physical mind is constituted as a result of the rise of karmas of limbs and minor-limbs which brings about change in matter. The purity of soul arising due to the destruction-cum-subsidence of energy-obstructing karmas and quasi-sense covering karmas is the psychic mind. For Sañjñī, the rise of destruction-cum-subsidence of energy obstructive and quasi-sense covering knowledge obscuring karmas, which are an instrumental cause for psychic mind, is automatic.

For generation of thought-activities, the psychical mind is the motive cause and the physical mind is the instrumental cause. Jīvas having only psychical mind are capable of accepting preachings of salvation.

संसारी जीवों के भेद (त्रस-स्थावर)
Kinds of Mundane Beings (Mobile & Immobile)

संसारिणस्त्रसस्थावराः ।।१२।।

(संसारिणः त्रस-स्थावराः।)

Saṁsāriṇastrasasthāvarāḥ. (12)

शब्दार्थ : **संसारिणः** – संसारी (जीव); **त्रसस्थावराः** – त्रस और स्थावर।

Meaning of Words : **Saṁsāriṇaḥ -** mundane souls; **Trasasthāvarāḥ -** mobile & immobile.

सूत्रार्थ : संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

English Rendering : Mundane souls are of two kinds - mobile and immobile.

टीका : जीवविपाकी त्रस नामकर्म के उदय से जीव त्रस कहलाता है और जीवविपाकी स्थावर नामकर्म के उदय से जीव स्थावर कहलाता है। त्रस जीवों के दो से लेकर पाँच इन्द्रियाँ तक होती हैं और स्थावर जीवों के मात्र एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है।

Comments : The souls who are governed by the rise of Jīva-vipākī Trasa Nāma karma, (karma, which directly affects the soul and mobile physique making karmic nature) are called 'Trasa' and those who are governed by the rise of Sthāvara Nāma karma (immobile physique making karmic nature) are called 'Sthāvara'. Mobile beings possess two to five sense organs. Immobile beings possess only sense of touch i.e. body.

स्थावर जीवों के भेद
Kinds of Immobile Beings

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ।।१३।।

(पृथिवी-अप्-तेजः-वायु-वनस्पतयः स्थावराः।)

Pṛthivyaptejovāyuvanaspatayaḥ Sthāvarāḥ. (13)

शब्दार्थ : **पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः –** पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति; **स्थावराः –** स्थावर (हैं)।

Meaning of Words : **Pṛthivyaptejovāyuvanaspatayaḥ -** earth, water, fire, air and vegetables; **Sthāvarāḥ -** im-mobile beings.

सूत्रार्थ : पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति – ये पाँच स्थावर हैं।

English Rendering : Earth, water, fire, air and vegetables - these five are immobile beings.

टीका : आगमानुसार स्थावर नामकर्म का उदय होने से ये पृथिवी आदि पाँचों एकेन्द्रिय जीव स्थावर कहलाते हैं। इनमें प्रत्येक के चार-चार भेद हैं। यथा – पृथिवी, पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक और पृथिवी जीव; जल, जलकाय, जलकायिक और जल जीव; अग्नि, अग्निकाय, अग्निकायिक और अग्नि जीव; वायु, वायुकाय, वायुकायिक और वायु जीव; वनस्पति, वनस्पतिकाय, वनस्पतिकायिक और वनस्पति जीव।

मार्ग में पड़ी हुई धूल 'पृथिवी' है। पृथिवीकायिक जीव के द्वारा परित्यक्त ईंट आदि 'पृथिवीकाय' हैं; जैसे – मृतक मनुष्य आदि का शरीर। पृथिवी और पृथिवीकाय में स्थावर नामकर्म का उदय न होने से वे निर्जीव हैं। जिस जीव के पृथिवी रूप काय विद्यमान है, उसे 'पृथिवीकायिक' कहते हैं। अर्थात् यह जीव पृथिवी रूप शरीर के सम्बन्ध से युक्त है, अतः जीव सहित होने से इसकी विराधना में दोष है। विग्रहगति में स्थित जीव जब तक पृथिवी में उत्पन्न नहीं हुआ है, तब तक एक, दो या तीन समय तक अनाहारक है और उसके बाद पृथिवी को काय रूप से ग्रहण करेगा। जिसके पृथिवी नामकर्म का उदय है और जो कार्मण काययोग में स्थित है, वह जीव 'पृथिवी जीव' कहलाता है।

विलोड़ा गया, इधर-उधर फैलाया गया और वस्त्र से गालित पानी 'जल' कहा जाता है। जलकायिक जीवों से छोड़ा गया पानी व उष्ण पानी 'जलकाय' कहा जाता है। जिसमें जल जीव रहता है, उसे 'जलकायिक' कहते हैं। जो आगे जलकायिक

होगा; अर्थात् जल पर्याय को ग्रहण करेगा, ऐसा विग्रह गति में रहने वाला जीव 'जल जीव' कहलाता है।

इधर-उधर फैली हुई या जिस पर जल सींच दिया गया हो या जिसका बहुभाग भस्म बन गया है, ऐसी अग्नि को 'अग्नि' कहते हैं। अग्निकायिक के द्वारा छोड़ी गई भस्म आदि 'अग्निकाय' कहलाती है। जिसमें अग्नि जीव विद्यमान है, उसे 'अग्निकायिक' कहते हैं। विग्रह गति को प्राप्त वह जीव 'अग्नि जीव' कहलाता है, जिसके अग्नि नामकर्म का उदय है और जो आगे अग्निकाय को धारण करेगा।

जिसमें वायुकायिक जीव आ सकता है, ऐसी वायु को 'वायु' कहते हैं। वायुकायिक जीव के द्वारा छोड़ी गई, बीजना (पङ्खा) आदि से चलाई गई हवा 'वायुकाय' कहलाती है। वायु जीव जिसमें मौजूद है, ऐसी वायु 'वायुकायिक' कहलाती है। विग्रह गति को प्राप्त वायु को काय रूप से ग्रहण करने वाला जीव 'वायु जीव' है।

छेदी, भेदी या मर्दित की गई लता आदि 'वनस्पति' है। सूखी वनस्पति जिसमें वनस्पति जीव नहीं है, 'वनस्पतिकाय' है। सजीव वृक्ष आदि 'वनस्पतिकायिक' हैं। विग्रह गति वाला जीव 'वनस्पति जीव' कहलाता है, जिसके वनस्पति नामकर्म का उदय है और जो आगे जाकर वनस्पति को शरीर रूप से ग्रहण करेगा।

सभी एकेन्द्रिय पर्याप्त दशा में जीवों के चार प्राण होते हैं - स्पर्शन इन्द्रिय प्राण, काय बल प्राण, उच्छ्वास-निश्वास प्राण और आयु प्राण। किन्तु अपर्याप्त दशा में उच्छ्वास-निश्वास को छोड़कर तीन ही प्राण होते हैं।

Comments : As per scriptural prescription, the earth-bodied etc. five kinds of one sensed beings due to rise of immobile Nāma karma are termed as immobile beings. Each one of them has four types. For instance, Pṛthivī (earth), Pṛthivī Kāya (earth body), Pṛthivī Kāyika (earth bodied creature) and Pṛthivī Jīva (one in transmigration state to take birth as earth bodied being); Jala (water), Jala Kāya (water body without any organism), Jala Kāyika (water bodied creature) and Jala Jīva (one in transmigration state to take birth as water bodied); Agni (fire),

Agni Kāya (fire body), Agni Kāyika (fire bodied creature) and Agni Jīva (one in transmigrating state to take birth as fire bodied being); Vāyu (air), Vāyu Kāya (air body), Vāyu Kāyika (air bodied creature and Vāyu Jīva (one in transmigration state to take birth as Vāyu Jīva); Vanaspati (plants), Vanaspati Kāya (plant body), Vanaspati Kāyika (plant bodied creature) and Vanaspti Jīva (one in transmigration state to take birth as plant body being).

Earth spread in the form of dust on the path is 'Pṛthivī'. The earth left by the earth bodied creature is 'Pṛthivī Kāya' like bricks etc., just like a dead body of a human being etc. As there is no rise of immobile Nāma karma of Pṛthivī and Pṛthivī Kāya, these are insentient ones. The soul which possesses earth as its body is known as 'Pṛthivī 'Kāyika'. That is the soul which has presently the earth as a body is a sentient being and as such it is a soul; any hurt to the same is an infirmity. The soul in tansmigration state till it is born remains without intake of food for one, two or three 'Samayas' and thereafter it accepts earth as its body. That soul which is governed by the rise of immobile Nāma karma and is activated by Kārmaṇa Kāya Yoga is 'Pṛthivī Jīva'.

Water stirred, spread in a random way and passed through cloth filter is called 'Jala'. Water left by the water-bodied-soul or sterlized water is called 'Jala-Kāya'. That which has presence of water bodied souls is known as 'Jala Kāyika'. That which will be 'Jala Kāyika' subsequently i.e. it will accept water as its body and is presently in transmigratory state is known as 'Jala Jīva'.

Hither & thither spread or that which has been dampened or quenched by water or the maximum portion of which has become ash, such a fire is termed as 'Agni'. The ash left by the fire bodied creature is known as 'Agni Kāya'. That in which a soul is present, such a fire is known as 'Agni Kāyika'. The soul in transmigration state to take birth as an 'Agni Kāyika' is known as 'Agni Jīva', governed by the rise of 'Agni Nāma karma'.

The air which can be assumed by a soul as its body is known as 'Vāyu'. That air which is left by an air bodied soul or that which is generated by blowing a fan etc. is known as 'Vāyu Kāya'. The air in which a soul is present is known as 'Vāyu Kāyika'. The soul in the state of transmigration to take birth as Vāyu Kāyika is known as 'Vāyu Jīva'.

Perforated, pierced or crushed creeping plants etc. are 'Vanaspati'. The dry plants in which no soul is present is known as 'Vanaspati Kāya'. Sentient trees etc. are known as 'Vanaspati Kāyika'. Transmigratory soul to take birh subsequently as plant organism is 'Vanaspati Jīva', governed by the rise of Vanaspati Nāma karma.

All one sense Jīvas who have completed all their physical characteristics possess four vitalities-vitality of touch sense organ, vitality of body, respiration and vitality of age. In the incomplete state (Aparyāpta Daśā), except respiration remaining three vitalities operate.

त्रस जीवों का कथन
Description of Mobile Beings

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ।।१४।।

(द्वि-इन्द्रिय-आदयः त्रसाः।)

Dvīndriyādayastrasāḥ. (14)

शब्दार्थ : **द्वीन्द्रियादयः** – दो इन्द्रिय आदि (अर्थात् दो, तीन, चार और पाँच इन्द्रिय जीव); **त्रसाः** – त्रस (कहलाते हैं)।

Meaning of Words : **Dvīndriyādayaḥ -** from two sense organs onwards (i.e. two, three, four and five sense organs beings); **Trasāḥ -** (are known as) mobile.

सूत्रार्थ : दो इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय तक के सभी जीव त्रस कहलाते हैं।

English Rendering : All beings from two sense organs to five sense organs are called mobile beings (Trasa).

टीका : दो इन्द्रिय जीव के स्पर्शन और रसना - दो इन्द्रियाँ होती हैं। अतः इनके दो इन्द्रियाँ, काय एवं वचन बल, उच्छ्वास-निश्वास, आयु - ऐसे छह प्राण होते हैं।

तीन इन्द्रिय जीव के स्पर्शन, रसना और घ्राण रूप तीन इन्द्रियाँ होती हैं। अतः तीन इन्द्रियाँ होने से पूर्वोक्त प्राणों में एक इन्द्रिय प्राण मिलकर, इनके कुल सात प्राण होते हैं।

चार इन्द्रिय जीव के स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु - ये चार इन्द्रियाँ होती हैं। अतः चक्षु इन्द्रिय सहित पूर्वोक्त सात प्राण मिलकर, इनके कुल आठ प्राण होते हैं।

पञ्चेन्द्रिय जीव के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण - ये पाँच इन्द्रियाँ होती हैं। पञ्चेन्द्रिय जीव असञ्ज्ञी और सञ्ज्ञी दो प्रकार के होते हैं। असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों के कर्ण इन्द्रिय सहित पूर्वोक्त आठ मिलकर नौ प्राण होते हैं और सञ्ज्ञी जीवों के मन बल होने से कुल दस प्राण होते हैं।

उपर्युक्त प्राणों का कथन पर्याप्तियाँ पूर्ण करने वाले जीवों की अपेक्षा से है। अपर्याप्त पञ्चेन्द्रिय दोनों प्रकार के जीवों में मन एवं वचन बल और उच्छ्वास-निश्वास इन तीन के बिना शेष सात प्राण होते हैं। अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय के क्रम से कर्णेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय कम करने से क्रमशः छह, पाँच और चार ही प्राण होते हैं।

Comments : Two sense Jīvas possess two sense organs i.e. touch and taste. As such they are bestowed with six vitalities i.e. two senses, body and speech power, respiration and age.

The three sense organ Jīvas possess three sense organs i.e. touch, taste and smell. As such by adding one more vitality i.e. smell, they possess in all seven vitalities.

The four sense organ Jīvas possess four sense organs i.e. touch, taste, smell and sight. As such by adding one more vitality of sight in the earlier seven vitalities, they possess eight vitalities.

The five sense organ Jīvas possess five sense organs i.e. touch, taste, smell, sight and hearing. Five sense organ Jīvas are of two kinds - Sañjñī (with mind) and Asañjñī (without mind). Asañjñī Jīvas possess nine vitalities including the additional one of hearing and Sañjñī Jīvas have ten vitalities including additional vitality of mind power.

The above statement is in the context of those Jīvas who have completed their vatalities. In the incomplete state both kinds of five sensed Jīvas possess only seven vitalities except that of mind, speech and respiration. In the incomplete state of four, three and two sensed, Jīvas possess only six, five and four vitalities respectively as they do not have vitalities of hearing, sight and smell in that order.

इन्द्रियों की सङ्ख्या
Number of Sense-organs

पञ्चेन्द्रियाणि ।।१५।।

(पञ्च-इन्द्रियाणि।)

Pañcendriyāṇi. (15)

शब्दार्थ : **पञ्चेन्द्रियाणि –** पाँच इन्द्रियाँ (होती हैं)।

Meaning of Words : **Pañcendriyāṇi -** five sense organs.

सूत्रार्थ : इन्द्रियाँ पाँच होती हैं।

English Rendering : Sense organs are five.

टीका : इन्द्रियाँ पाँच हैं, अधिक नहीं। 'इन्द्र' यानी आत्मा की अर्थात् संसारी जीव की पहिचान कराने वाला जो चिह्न है, उसे 'इन्द्रिय' कहते हैं। प्रत्येक इन्द्रिय अपने-अपने विषय का ज्ञान उत्पन्न होने में निमित्त कारण है। कोई एक इन्द्रिय किसी दूसरी इन्द्रिय के अधीन नहीं होती है।

Comments : Sense organs are five and not more. 'Indra' means soul. It is an identification mark by which a mundane soul is recoganized and is called 'Indriya'. Each sense organ is an instrumental cause in acquisition of knowledge of its specified object. No sense organ is subordinate to any other sense organ.

इन्द्रियों के प्रकार
Kinds of Sense-organs

द्विविधानि ।।१६।।

(द्वि-विधानि।)

Dvividhāni. (16)

शब्दार्थ : **द्विविधानि –** दो-दो प्रकार की हैं।

Meaning of Words : **Dvividhāni -** are of two kinds (each).

सूत्रार्थ : वे सभी इन्द्रियाँ दो-दो प्रकार की हैं।

English Rendering : All sense organs are each of two kinds.

टीका : सभी इन्द्रियाँ – द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय – ऐसे दो-दो प्रकार की हैं। इनका वर्णन अगले सूत्रों में किया जाएगा।

Comments : All sense organs are each of two kinds - physical and psychical. Their description is being given in the following Sūtras.

द्रव्येन्द्रियों का स्वरूप
Nature of Physical Sense-organs

निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ।।१७।।

(निर्वृत्ति-उपकरणे द्रव्य-इन्द्रियम्।)

Nirvṛttyupakaraṇe Dravyendriyam. (17)

शब्दार्थ : **निर्वृत्त्युपकरणे –** निर्वृत्ति और उपकरण; **द्रव्येन्द्रियम् –** द्रव्य इन्द्रिय (है)।

Meaning of Words : **Nirvṛttyupakaraṇe -** accomplishment (of the organs) and instruments (protection environment); **Dravyendriyam -** (are) physical sense organs.

सूत्रार्थ : निर्वृत्ति और उपकरण रूप द्रव्येन्द्रिय दो प्रकार की होती है।

English Rendering : The physical sense organs are of two kinds - physical accomplishment and instruments protecting its environment.

टीका : नामकर्म के द्वारा जिसकी रचना या निष्पादना की जाती है, वह निर्वृत्ति कहलाती है। जिसके द्वारा निर्वृत्ति का उपकार किया जाता है, वह उपकरण है।

निर्वृत्ति दो प्रकार की होती है – बाह्य निर्वृत्ति और आभ्यन्तर निर्वृत्ति।

पुद्गल विपाकी नामकर्म के उदय से आत्मप्रदेशों में प्रतिनियत स्थान में होने वाली इन्द्रिय रूप पुद्गल की रचना विशेष को बाह्य निर्वृत्ति कहते हैं। और उत्सेधाङ्गुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण आत्मा के विशुद्ध प्रदेशों का चक्षु आदि इन्द्रियों के आकार रूप जो परिणमन ज्ञानावरण के क्षयोपशम से होता है, उसे आभ्यन्तर निर्वृत्ति कहते हैं। जो निर्वृत्ति का उपकार करता है, उसे उपकरण कहते हैं। निर्वृत्ति के समान यह भी दो प्रकार का है – बाह्य और आभ्यन्तर। नेत्र इन्द्रिय में पलक, बरोनी आदि बाह्य उपकरण हैं और कृष्ण एवं शुक्ल मण्डल आभ्यन्तर उपकरण हैं। इसी प्रकार शेष इन्द्रियों के बारे में भी जानना चाहिए।

Comments : The (organ) formation as a result of rise of Nāma karma is known as 'Nirvṛtti' and the part that provides protection to this formation is called instrument or 'Upakaraṇa'.

The formation is again of two kinds - external formation and internal formation.

The collection of matter particles, owing to the fruition of physique making Nāma karma, in the particular shape and in a pre-specified location in the space points forming sense organs, is the external formation. The transformation of pure soul's space-points equal to innumerable part of Utsedhāṅgula assuming the shape of eyes etc. as a result of fruition of destruction-cum-subsidence of knowledge obscuring karmas, is the internal formation. The part which provides protection to such formations is called instrument. Like formations, it is also of two kinds - external and internal. For example, in the eyes, eyelids and eye lashes are the external protection and black and white eye-ball is the internal protection. Similarly, it must be understood in the case of other sense organs.

भावेन्द्रियों का लक्षण
Characteristic of Psychic Sense-organs

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ।।१८।।

(लब्धि-उपयोगौ भाव-इन्द्रियम्।)

Labdhyupayogau Bhāvendriyam. (18)

शब्दार्थ : **लब्ध्युपयोगौ –** लब्धि (और) उपयोग (रूप); **भावेन्द्रियम् –** भाव इन्द्रिय है।

Meaning of Words : **Labdhyupayogau -** attainment & active consciousness; **Bhāvendriyam -** psychic sense organs.

सूत्रार्थ : लब्धि और उपयोग रूप भावेन्द्रिय होती है।

English Rendering : The psychic sense organs consists of attainment and active consciousness.

टीका : जो लब्धि और उपयोग रूप हैं, वे भावेन्द्रियाँ हैं। लब्धि का अर्थ प्राप्ति अथवा लाभ होता है। जिसके संसर्ग से आत्मा द्रव्येन्द्रिय की रचना करने को तत्पर होता है, ऐसे ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम विशेष को लब्धि कहते हैं तथा लब्धि के अवलम्बन से उत्पन्न होने वाले आत्मा के व्यापार को उपयोग कहते हैं।

Comments : Attainment and active consciousness constitute the psychic sense. 'Labdhi' means attainment or gain. The rise of special type of destruction-cum-subsidence of knowledge obscuring karmas, which prompts the soul for formation of physical sense organs is known as 'Labdhi' or attainment and the disposition of soul as a result of such attainment is known as active consciousness or 'Upayoga'.

इन्द्रियों के नाम
Names of Sense-organs

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ।।१९।।

(स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि।)

Sparśanarasanaghrāṇacakṣuḥśrotrāṇi. (19)

शब्दार्थ : **स्पर्शन –** स्पर्शन; **रसन –** रसना; **घ्राण –** घ्राण; **चक्षुः –** चक्षु; **श्रोत्राणि –** श्रोत्र (हैं)।

Meaning of Words : **Sparśana -** (organ of) touch i.e. the skin, the whole body; **Rasana -** (organ of) taste i.e. the tongue; **Ghrāṇa** - (organ of) smell i.e. the nose; **Cakṣuḥ -** (organ of) sight i.e. eye; **Śrotrāṇi** - (organ of) hearing i.e. ear.

सूत्रार्थ : स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र – ये पाँच इन्द्रियाँ हैं।

English Rendering : Five sense-organs are - body (skin), tongue, nose, eye and ear.

टीका : जिसके द्वारा छुआ जाता है वह स्पर्शन इन्द्रिय है। जिसके द्वारा चखा जाता है वह रसन इन्द्रिय है। जिसके द्वारा सूँघा जाता है वह घ्राण इन्द्रिय है। जिसके द्वारा पदार्थों को देखा जाता है वह चक्षु इन्द्रिय है। जिसके द्वारा सुना जाता है वह श्रोत्र इन्द्रिय है।

चूँकि सर्व संसारी जीवों में स्पर्शन इन्द्रिय अवश्य पाई जाती है, इसलिये नाना जीवों की अपेक्षा व्याप्त होने से आदि में स्पर्शन इन्द्रिय का कथन है। रसन आदि इन्द्रियों के प्रदेश उत्तरोत्तर अल्प-अल्प होने से इनका क्रमशः ग्रहण किया गया है। जैसे – सबसे कम प्रदेश चक्षु इन्द्रिय के हैं, इससे श्रोत्र इन्द्रिय के प्रदेश संख्यात गुणे हैं, इससे कुछ अधिक घ्राण इन्द्रिय के प्रदेश हैं। घ्राण इन्द्रिय से रसन इन्द्रिय के प्रदेश असंख्यात गुणे हैं और इससे भी अनन्त गुणे प्रदेश स्पर्शन इन्द्रिय के हैं।

यद्यपि चक्षु इन्द्रिय के प्रदेश सबसे कम हैं, अतः उसका सबसे अन्त में ग्रहण करना चाहिए। तथापि बहु-उपकारी होने से श्रोत्रेन्द्रिय का अन्त में ग्रहण किया है, क्योंकि श्रोत्रेन्द्रिय के बल से उपदेश को सुनकर हित की प्राप्ति और अहित के परिहार में प्रवृत्ति होती है। इसलिये बहु-उपकारी श्रोत्रेन्द्रिय को अन्त में ग्रहण किया है।

श्रोत्र इन्द्रिय का आकार यवनाली के समान, चक्षु इन्द्रिय का मसूर के समान, घ्राण इन्द्रिय का अतिमुक्तक पुष्प के समान, जिह्वा इन्द्रिय का अर्धचन्द्र अथवा खुरपे के समान तथा स्पर्शन इन्द्रिय का आकार शरीरानुसार अनेक प्रकार से होता है।

Comments : Experience of touching is an act of touch sense. The sense which makes us experience the taste is the act of taste sense. That through which smell is experienced is the act of smell

sense. That through which objects are seen is the act of sight-sense and that through which hearing is experienced is the act of hearing sense.

As the sense organ of touch is possessed by all mundane beings, it is placed first in the Sūtra in the context of many Jīvas. The space-points of other sense-organs like taste etc. are found in lesser and lesser Jīvas. They are mentioned in that order. For example, the least number of space-points are found in sight sense organ (i.e. eyes). The space points of hearing sense are numberable times more than those of eyes; some what more than these are the space points of smell sense and the space points of the taste sense are in-numerable times more than that of smell sense and the space points of sense of touch are infinite times more than that of taste sense.

Although the space points of eyes are the least, as such it should have been mentioned in the last; but because the hearing sense is the best means of welfare of the beings, it is mentioned in the last because through the power of preaching one can attain beneficial activities and refrain from harmful ones. As such hearing sense being many-fold-benefactor, is stated in the last.

The shape of hearing sense (ear) is similar to Yavanālī i.e. barlay like tube, that of sight sense (eyes) is like lentil, that of smell sense (nose) is like blown up (final beatitude) flower, that of taste sense (tongue) is like crescent (half moon) or Khurpā - a scraping instrument and the shape of touch sense is of various kinds depending on the body.

इन्द्रियों के विषय
Subjects of Sense-organs

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ।।२०।।

(स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दाः तत्-अर्थाः।)

Sparśarasagandhavarṇaśabdāstadarthāḥ. (20)

शब्दार्थ : **स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाः** – स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द; **तत्** – उस (उन इन्द्रियों) के; **अर्थाः** – विषय (हैं)।

Meaning of Words : **Sparśarasagandhavarṇaśabdāḥ -** touch, taste, smell, colour and sound; **Tat -** (of) those (sense-organs); **Arthāḥ -** (are) subjects or functions.

सूत्रार्थ : स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द ये इन्द्रियों के (क्रमशः) विषय हैं।

English Rendering : Touch, taste, smell, colour and sound are the objects of functions (respectively) of these sense organs.

टीका : द्रव्य और पर्याय की प्राधान्य विवक्षा में स्पर्श आदि शब्दों की क्रम से कर्म साधन और भाव साधन में सिद्धि जानना चाहिए। जब द्रव्य की विवक्षा प्रधान रहती है तब कर्म-निर्देश होता है। जैसे - जो स्पर्श किया जाता है वह स्पर्श है; जो स्वाद को प्राप्त होता है वह रस है; जो सूँघा जाता है वह गन्ध है; जो देखा जाता है वह वर्ण है और जो शब्द रूप होता है वह शब्द है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार ये सब स्पर्शादिक द्रव्य ठहरते हैं। तथा जब पर्याय की विवक्षा रहती है तब भाव-निर्देश होता है। जैसे - स्पर्शन स्पर्श है, रसन रस है, गन्धन गन्ध है, वर्णन वर्ण और शब्दन शब्द है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार ये सब स्पर्शादिक धर्म निश्चित होते हैं। इन स्पर्शादिक का क्रम इन्द्रियों के क्रम से ही व्याख्यात है। अर्थात् इन्द्रियों के क्रम को ध्यान में रखकर इनका क्रम से कथन किया है।

स्पर्श के आठ प्रकार हैं - शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, कोमल, कठोर, हल्का और भारी। रस के पाँच प्रकार हैं - आम्ल (खट्टा), मधुर (मीठा), कटुक (कड़ुआ), कषायला और तिक्त (तीखा या चरपरा)। गन्ध के दो प्रकार हैं - सुगन्ध और दुर्गन्ध। वर्ण के पाँच प्रकार हैं - काला, पीला, नीला, लाल और सफेद। शब्द के सात प्रकार हैं - षड्ज, ऋषभ, गन्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद।

इस प्रकार इन्द्रियों के कुल विषय सत्ताईस हैं और उनके संयोग से संख्यात भेद हो जाते हैं। सञ्ज्ञी जीवों के इन्द्रिय द्वारा होने वाले चैतन्य व्यापार में मन निमित्त रूप होता है।

Comments : The derivative of touch etc. from the object of performing an activity and from the sense of an abstract noun must be understood from the point of view of substance and modes respectively. When the substance is under prime consideration, the object of performance of an activity is indicated. For instance, the substance which is touched is touch; the substance which is tasted is a taste,

which is smelt is a smell, which is seen is a colour and which is sounded is a sound. In this sense all these action oriented touch etc. are substances. When the modes are under primary consideration, the sense of an abstract noun is indicated. For instance, touching is touch. Tasting is taste. Smelling is smell. Seeing is colour. Sounding is sound. Their order is in accordance with the order of senses. That is, keeping in view the order of sense - manifestation, their order of activities is stated.

Touch is of eight kinds - cold, hot, moist, dry, soft, hard, light & heavy. Taste is of five kinds - sour, sweet, bitter, astringent and pungent. Smell is of two kinds - fragrance & offensive. Colour is of five kinds - black, yellow, blue, red & white. Word is of seven kinds - Ṣaḍja, Ṛṣabha, Gandhāra, Madhyama, Pañcama, Dhaivata and Niṣāda.

In this way, the objects of the sense organs are twenty-seven and these are further classified in numerable kinds. Mind is an instrumental cause in the knowledge acquisition by those souls who are bestowed with the faculty of mind i.e. Sañjñī Jīvas.

मन का विषय

Scope of Mind

श्रुतमनिन्द्रियस्य ।।२१।।

(श्रुतम्-अनिन्द्रियस्य।)

Śrutamanindriyasya. (21)

शब्दार्थ : **श्रुतम् –** श्रुत (ज्ञान); **अनिन्द्रियस्य –** अनिन्द्रिय (मन) का (विषय है)।

Meaning of Words : **Śrutam -** scriptural (knowledge); **Anindriyasya -** (is a function) of mind.

सूत्रार्थ : श्रुतज्ञान मन का विषय है।

English Rendering : Scriptural knowledge is obtained through the province of mind.

टीका : श्रवण किये हुये पदार्थ का विचार करने में जीव की प्रवृत्ति मन के द्वारा होती है। कर्णेन्द्रिय से श्रवण किये गये शब्द का ज्ञान मतिज्ञान है। उस मतिज्ञानपूर्वक किये गये विचार को श्रुतज्ञान कहते हैं। हित की प्राप्ति और अहित का त्याग मन के द्वारा होता है। इसलिये सञ्ज्ञी जीव ही आत्म-कल्याण करने योग्य होते हैं।

श्रुतज्ञान जिस विषय को जानता है, उसमें मन निमित्त है। मन किसी इन्द्रिय के अधीन नहीं रहता।

Comments : It is the faculty of a living being's mind to reflect on the subject matter heard. The knowledge of a word acquired through the hearing sense organ is the sensory knowledge. Reflection on the subject matter attained by sensory knowledge is scriptural knowledge. Acceptance of the thoughts of benevolence and rejection of non-benevolence is governed by mind. Therefore the souls gifted with faculty of mind are capable of self-enlightenment.

Mind is the instrumental cause for the knowledge aquired through scriptural knowledge. Mind is not dependant on any other sense organ.

स्थावर जीवों की इन्द्रिय

Sense-organ of Immobile Beings

वनस्पत्यन्तानामेकम् ।।२२।।

(वनस्पति-अन्तानाम् एकम्।)

Vanaspatyantānāmekam. (22)

शब्दार्थ : **वनस्पत्यन्तानाम् –** वनस्पति पर्यन्त जीवों के; **एकम् –** एक (प्रथम स्पर्शन इन्द्रिय होती है)।

Meaning of Words : **Vanaspatyantānām-** (such souls) ending up to the name vegitables & plants; **Ekam -** one (first touch sense organ).

सूत्रार्थ : पृथिवीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक पर्यन्त स्थावर जीवों के एक यानी प्रथम स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

English Rendering : From earth-bodied to the vegetable bodied immobile souls (i.e. earth-bodied, water-bodied, fire-bodied, air-bodied and vegetable-bodied) have only one i.e. first touch sense organ.

टीका : सूत्र में आये 'एकम्' शब्द का प्रयोग प्रथम इन्द्रिय स्पर्शन के लिये किया गया है। वीर्यान्तराय और स्पर्शन इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर एवं शेष इन्द्रियों के सर्वघाती स्पर्धकों के उदय होने पर तथा शरीर नामकर्म के अवलम्बन होने पर एवं एकेन्द्रिय जाति नामकर्म के उदय की आधीनता रहते हुए एक मात्र स्पर्शन इन्द्रिय प्रकट होती है।

Comments : The mention of the word 'Ekam' in the Sūtra is to indicate touch - the first sense organ. The touch sense arises subject to the rise of destruction-cum-subsidence of energy obstructive karma and touch obscuring karma and the rise of karmas which totally destroy the remaining senses as well as on attainment of physique making karma and the rise of Nāma karma of one sense being class.

त्रस जीवों की इन्द्रियाँ

Sense-organs of Mobile Beings

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ।।२३।।

(कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्य-आदीनाम् एक-एक-वृद्धानि।)

Kṛmipipīlikābhramaramanuṣyādīnāmekaikavṛddhāni. (23)

शब्दार्थ : **कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनाम् –** कृमि, पिपीलिका, भ्रमर तथा मनुष्य इत्यादि के; **एकैकवृद्धानि –** (क्रम से) एक-एक (इन्द्रिय) बढ़ती है।

Meaning of Words : **Kṛmipipīlikābhramaramanuṣyādīnām -** worm, ant, bumble-bee and human being etc; **Ekaikavṛddhāni -** (sense organs) succesive increase one by one.

सूत्रार्थ : कृमि, पिपीलिका, भ्रमर और मनुष्य आदि के (क्रम से) एक-एक इन्द्रिय अधिक बढ़ती जाती है।

English Rendering : Each of the following i.e. the worm, the ant, the bumble-bee and human being etc. has respectively increasing one by one order of senses.

टीका : इस सूत्र में इन्द्रियों के एक-एक के क्रम से बढ़ने का कथन किया गया है। इससे पूर्व सूत्र में स्थावर जीवों के मात्र स्पर्शन इन्द्रिय का कथन किया गया है। कृमि आदि जीवों के दो इन्द्रियाँ - स्पर्शन और रसना होती हैं। पिपीलिका यानी चींटी आदि जीवों के तीन इन्द्रियाँ - स्पर्शन, रसना और घ्राण होती हैं। भ्रमर आदि जीवों के चार इन्द्रियाँ - स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु इन्द्रियाँ होती हैं। मनुष्य आदि के श्रोत्र इन्द्रिय के और मिला देने पर पाँच इन्द्रियाँ होती हैं।

Comments : Mention of one by one increase of sense organs is given in this Sūtra. In the previous Sūtra, it is said that immobile beings have one touch sense. Worms etc. have two - touch & taste sense-organs. Ants etc. have three - touch, taste and smell sense-organs. Bees etc. have four - touch, taste, smell and sight sense-organs. Human beings etc. have five sense organs i.e. touch, taste, smell, sight and hearing after addition of sense organ of hearing.

पञ्चेन्द्रिय जीवों के भेद
Kinds of Five Sense-organs Beings

सञ्ज्ञिनः समनस्काः ।।२४।।

Sañjñinaḥ Samanaskāḥ. (24)

शब्दार्थ : **सञ्ज्ञिनः** - सञ्ज्ञी; **समनस्काः** - मन सहित (जीव होते हैं)।

Meaning of Words : **Sañjñinaḥ -** rational being; **Samanaskāḥ -** possessing faculty of mind (are souls).

सूत्रार्थ : मन सहित जीव सञ्ज्ञी होते हैं।

English Rendering : Living beings endowed with faculty of mind are called the rational (Sañjñī).

टीका : मन सहित जीवों को सञ्ज्ञी कहते हैं। मन रहित जीव असञ्ज्ञी होते हैं। एक इन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक सभी जीव नियम से असञ्ज्ञी ही होते हैं। पञ्चेन्द्रिय जीवों में देव, मनुष्य और नारकी सञ्ज्ञी ही होते हैं, किन्तु कुछ तिर्यञ्च मन सहित और कुछ मन रहित होते हैं।

Comments : Living beings endowed with faculty of mind are called 'Sañjñī'. As such those who are not endowed with faculty of mind are 'Asañjñī'. All living beings having one sense organ to four sense organs, as a rule, are 'Asañjñī'. Amongst, five sense organs living beings, the celestial beings, the human beings and the hellish beings are 'Sañjñī' but some of the Tiryañcas are endowed with faculty of mind and some others are without faculty of mind.

विग्रहगति में होने वाला योग
Yoga in Transmigration State

विग्रहगतौ कर्मयोगः ।।२५।।

Vigrahagatau Karmayogaḥ. (25)

शब्दार्थ : **विग्रहगतौ –** विग्रहगति में; **कर्मयोगः–** कर्म-योग (होता है)।

Meaning of Words : **Vigrahagatau -** in transmigration state; **Karmayogaḥ -** kārmaṇa body vibration.

सूत्रार्थ : विग्रहगति में अर्थात् नये शरीर धारण हेतु गति – गमन में कर्म – कार्मण काययोग होता है।

English Rendering : In the state of transmigration when a soul migrates to assume a new body, it has the karma i.e. vibration of kārmaṇa body, as the cause.

टीका : विग्रह का अर्थ शरीर है। एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर की प्राप्ति के लिये गति – गमन करना विग्रहगति है।

कर्मों के समूह को कार्मण शरीर कहते हैं। आत्म–प्रदेशों के परिस्पन्दन को योग कहते हैं। इस परिस्पन्दन में कार्मण शरीर निमित्त रूप है, इसलिये उसे कर्मयोग अथवा कार्मण काययोग कहते हैं। इसी कारण विग्रहगति में भी नये कर्मों का आस्रव होता है।

मरण होने पर नवीन शरीर को ग्रहण करने के लिये जीव जब गमन करता है तब मार्ग में एक, दो या तीन समय तक अनाहारक रहता है। उस समय में कार्मण काययोग के कारण कर्म पुद्गलों का तथा तैजस वर्गणाओं का ग्रहण होता है, किन्तु नो–कर्म पुद्गलों का ग्रहण नहीं होता।

Comments : 'Vigraha' means body. For formation of a new body after leaving the present body, the motion of a soul is known as 'Vigraha Gati' or transmigration.

The group of karmas is called 'Kārmaṇa Śarīra.' The vibration of space-points of soul is known as 'Yoga'. The Kārmaṇa Śarīra is the instrumental cause for vibration of space points of soul and therefore it is termed as 'Kārma-Yoga' or 'Kārmaṇa Kāya Yoga', which causes influx of new karmas in the transmigration state also.

When the soul transmigrates after death for formation of a new body, it remains without intake of No-karma Pudgala particles for one, two or three 'Samayas'. In that period, as a result of 'Kārmaṇa Kāya Yoga', there is bondage of karmic matter and Taijasa Vargaṇās but there is no intake of No-karma (quasi-karma) matter particles.

जीव और पुद्गल की गति
Movement of Soul and Pudgala

अनुश्रेणि गतिः ।।२६।।

Anuśreṇi Gatiḥ. (26)

शब्दार्थ : **अनुश्रेणि** – श्रेणी के अनुसार; **गतिः** – गमन (होता है)।

Meaning of Words : **Anuśreṇi -** in rows (i.e. straight lines); **Gatiḥ -** movement.

सूत्रार्थ : विग्रहगति में जीव श्रेणी के अनुसार ही गमन करता है।

English Rendering : In transmigration, the movement of soul is in accordance with rows (straight lines of space).

टीका : लोक के मध्य से लेकर ऊपर, नीचे और तिरछे क्रम से सन्निविष्ट (रचना) आकाश प्रदेशों की पङ्क्ति को श्रेणी कहते हैं। उस श्रेणी के अनुसार ही गमन होता है। वस्त्रगत तन्तुओं के समान अथवा चर्म के अवयव के समान अनुक्रम से ऊपर, नीचे और तिरछे रूप से व्यवस्थित आकाश प्रदेशों की पङ्क्तियों को श्रेणी कहते हैं।

संसारी जीव एक भव से दूसरे भव में जाते समय छह प्रकार से गमन करता है - 1. ऊपर से नीचे की ओर; 2. नीचे से ऊपर की ओर; 3. पूर्व से पश्चिम की ओर; 4. पश्चिम से पूर्व की ओर; 5. उत्तर से दक्षिण की ओर; और 6. दक्षिण से उत्तर की ओर।

गतिशील द्रव्य दो ही हैं – जीव और पुद्गल। इन दोनों में गति क्रिया की शक्ति है। इसलिये वे निमित्तवश गति क्रिया में परिणत होकर गति करने लगते हैं। बाह्य उपाधि से भले ही वे वक्र गति करें, पर उनकी स्वाभाविक गति तो सीधी ही होती है। सीधी गति से आशय है कि पहले जिस आकाश क्षेत्र में जीव या परमाणु आदि स्थित हों, वहाँ से गति करते हुए वे उसी आकाश क्षेत्र की सरल रेखा में ऊपर, नीचे या तिरछे, चाहे जहाँ तक लोक में चले जाते हैं। इसी स्वाभाविक गति को लेकर सूत्र में कहा गया है कि गति अनुश्रेणी होती है।

चन्द्रमा आदि ज्योतिष्क देवों की, मेरु की प्रदक्षिणा करते समय विद्याधरों की विश्रेणी गति भी पाई जाती है। लेकिन मरण के समय जब जीव एक भव को छोड़कर दूसरे भव के लिये गमन करता है और मुक्त जीव जब ऊर्ध्वगमन करते हैं तब उनकी गति अनुश्रेणी ही होती है। इसके अतिरिक्त जो गति होती है वह विश्रेणी भी हो सकती है। किसी एक निश्चित प्रकार की गति होने का कोई नियम नहीं है।

Comments : Commencing from the centre of the universe, the regular series of successive space-points (of sky) in all directions - higher up, down and side ways are called rows. The motion takes place according to rows only. The space-points of sky arranged in

upwards, downwards and sideways successively like fibres woven in a cloth or in a leather article is called 'Row'.

The mundane souls in transmigration from one life-course to the other life-course move in six patterns - 1. from higher to lower; 2. from lower to higher; 3. from east to west direction; 4. from west to east direction; 5. from north to south direction; and 6. from south to north direction.

Movable substances are only two - Jīva and Pudgala (matter). Both these possess power of moving. As such when they get an appropriate instrumental cause, they start moving. When faced with external impediments, they might be moving in curves but their natural motion is to move in rows in straight lines. The movement in straight lines means that from the place of previous location, a Jīva or Paramāṇu etc. in the space would move in straight lines of the space either upwards, downwards or side ways, wherever it needs to go. This natural movement is stated in this Sūtra as in successive rows.

The revolution of heavenly bodies like stellars - moon etc. and taking rounds of mount Meru by Vidyādharas are not necessarily in rows. The transmigration of a soul after death to attain another birth and the upward movement of liberated souls are always in rows only. Excepting this, the other movements can be without moving in rows. There is no definite rule with regard to other movements.

सिद्ध जीव की गति
Movement of Liberated Soul

अविग्रहा जीवस्य ।।२७।।

Avigrahā Jīvasya. (27)

शब्दार्थ : **अविग्रहा –** विग्रह रहित (गति); **जीवस्य –** (सिद्ध) जीव की।

Meaning of Words : **Avigrahā -** movement without a bend; **Jīvasya -** (of liberated) soul.

सूत्रार्थ : मुक्त जीव की गति मोड़ा रहित अर्थात् सीधी होती है।

English Rendering : Movement of a liberated soul is without a bend. i.e. it moves in straight lines.

टीका : अगले सूत्र में चूँकि संसारी जीव का विषय है, इसलिये यहाँ 'जीवस्य' का अर्थ मुक्त जीव है। यह अर्थ अगले सूत्र में 'संसारिणः' पद के ग्रहण करने से स्पष्ट हो जाता है। मुक्त जीव श्रेणीबद्ध गति से एक समय में सीधे यथायोग्य कुछ कम सात राजू ऊपर गमन करके सिद्ध क्षेत्र में जाकर स्थित हो जाते हैं।

Comments : The next Sūtra, describes mundane beings and therefore the word 'Jīvasya' here is in the context of liberated soul. This inference becomes clear by the mention of the word 'Saṁsāriṇaḥ' in the next Sūtra. The liberated souls establish in the liberated abode located at the end of Loka after moving in straight rows covering a distance of some what less than seven Rājū in a period of one 'Samaya'.

संसारी जीवों की गति
Transmigratory Movement of Mundane Beings

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ।।२८।।

Vigrahavatī Ca Saṁsāriṇaḥ Prāk Caturbhyaḥ. (28)

शब्दार्थ : **विग्रहवती च –** विग्रह – मोड़ेवाली व (अविग्रह– बिना मोड़ेवाली गति) **संसारिणः –** संसारी (जीव) की; **प्राक् चतुर्भ्यः –** चौथे समय से पहले।

Meaning of Words : **Vigrahavatī Ca -** transmigratory movement with bends & (without bends); **Saṁsāriṇaḥ -** of mundane being; **Prāk Caturbhyaḥ -** prior to the fourth 'Samaya'.

सूत्रार्थ : संसारी जीव की गति मोड़ेवाली और बिना मोड़ेवाली होती है। मोड़ेवाली गति चार समयों से पहले अर्थात् तीन समयों तक होती है।

English Rendering : Transmigratory movement of a mundane being is with a bend or bends and without bends also. Movement with bends is prior to the four Samayas i.e. up to three Samayas.

टीका : संसारी जीव की गति विग्रह - मोड़ा सहित और अविग्रह - मोड़ा रहित होती है। यदि मोड़ा रहित गति होती है तो ऐसी ऋजु-गति - इषु-गति में एक समय लगता है। यदि एक मोड़ा लेना पड़े तो दो समय; दो मोड़ा लेना पड़े तो तीन समय और तीन मोड़ा लेना पड़े तो चार समय लगते हैं। जीव चौथे समय में तो नियम से कहीं न कहीं नया शरीर धारण कर लेता है। इसलिये विग्रहगति का समय अधिक से अधिक तीन समय तक होता है। इन गतियों के नाम हैं - 1. ऋजु-गति (इषु-गति); 2. पाणिमुक्ता-गति; 3. लाङ्गलिका-गति और 4. गोमूत्रिका-गति।

एक परमाणु को मन्द गति से एक आकाश प्रदेश से निकट के अन्य आकाश प्रदेश तक जाने में जो समय लगता है, वह एक समय है। यह काल की सबसे छोटी इकाई है।

लोक में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ जाने में जीव को तीन से अधिक मोड़ा लेना पड़ते हों। यह स्थिति एकेन्द्रिय जीवों को एकेन्द्रिय से एकेन्द्रिय में जाने पर ही होती है।

Comments : The transmigratory movement of a mundane being is with bends (Vigraha) and also without bends (Avigraha). If the transmigratory movement is without bend, such a motion is known as 'Ṛju-gati' or 'Iṣu-gati' and takes only one 'Samaya'. If the beings are required to take one bend, it requires two 'Samayas'. If two bends are required, it takes three 'Samayas' and if three bends are required, it takes four 'Samayas'. In the fourth 'Samaya', as a rule, the souls take a new birth at some place. As such the time taken in transmigration is maximum three 'Samayas'. The names of different kinds of transmigratory movement are - Ṛju-gati (Iṣu-gati) - straight motion; 2. Pāṇimu ktā-gati (curved motion). 3. Lāṅgalikā-gati (motion with two bends); and 4. Gomūtrikā-gati (motion with three bends).

The unit of time 'Samaya' is defined as the time taken by one Paramāṇu from the space-point of the sky to move with medium speed to the other nearest space point. This is the smallest unit of time.

There is no place in the Loka where a soul takes more than three bends in its transmigration. This time is taken only by one sense soul to take another birth in one sense life course.

बिना विग्रहवाली गति का काल
Time in Transmigration without a Bend

एकसमयाऽविग्रहा ।।२९।।

(एक-समया-अविग्रहा।)

Ekasamayā(a)vigrahā. (29)

शब्दार्थ : **एकसमया –** एक समयवाली; **अविग्रहा –** विग्रह रहित (बिना मोड़ेवाली गति)।

Meaning of Words : **Ekasamayā -** of one Samaya; **Avigrahā -** transmigration without bends.

सूत्रार्थ : अविग्रह यानी मोड़ा रहित गति एक समयवाली होती है।

English Rendering : Transmigratory movement without a bend takes one 'Samaya'.

टीका : मध्य लोक से सिद्धालय को जाते समय मुक्त जीवों के बिना मोड़ेवाली ऋजु–गति होती है। दूसरे भव में जाते समय संसारी जीव के भी बिना मोड़ेवाली गति ऋजु–गति होती है तथा लोक पर्यन्त जाने वाले पुद्गलों के व्याघात के अभाव में एक समय वाली अविग्रह–गति होती है। गतिमान जीव और पुद्गलों की अविग्रहवाली गति लोक के अग्रभाग तक एक समय में हो जाती है।

मुक्त जीव के अनन्त वीर्य प्रकट हो जाने से एक ही समय में लोक के अग्रभाग को प्राप्त करानेवाली गति हो जाती है एवं संसारी जीव के पूर्व शरीर को छोड़कर अन्य शरीर को प्राप्त करानेवाली गति के योग्य वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से लोक के अन्त में स्थिति शरीर को प्राप्त करा देती है।

अधोलोक के तनुवातवलय में स्थित कोई एकेन्द्रिय जीव मरण कर जब ऊर्ध्वलोक के अन्त में जन्म लेता है तब एक समय में चौदह राजू गमन कर जन्म ले सकता है। अथवा ऊर्ध्वलोक के अन्त में स्थित तनुवातवलय से मरकर अधोलोक के सबसे अन्त में स्थित तनुवातवलय में जन्म लेवे तो वह एक समय में चौदह राजू गमन कर सकता है।

Comments : Liberated souls, moving from Madhyaloka to 'Siddhālaya' move in straight rows without a bend. The movment is called 'Ṛju-gati'. The mundane beings while transmigrating from one life course to another also move in 'Ṛju-gati'. The matter particles moving without impediments up to the end of universe in one 'Samaya' also do so through 'Avigraha-gati' i.e. movement without bend. Moving Jīvas and matter Particles without bend can also move up to the end of Loka in one 'Samaya'.

As a result of attainment of infinite energy, the liberated soul is capable for movement up to the end of Loka in one 'Samaya' and on destruction-cum-subsidence of energy obstructive karma of a mundane being, the Jīva while migrating from one life to another for taking birth at the end of Loka, generates required speed to reach there.

If a one sensed Jīva located in Tanuvātavalaya (rarefied air atmosphere) of Adholoka (lower part of the universe) on expiry of its life-span takes birth at the end of the upper part of universe i.e. Ūrdhvaloka, then it can take birth, covering fourteen Rājū distance in one 'Samaya'. Or a soul located at the rarefied air atmosphare of the upper part of the universe, after completing life span has to take birth in the rarefied air atmosphere of the lower part of the universe, can do so by travelling a distance of fourteen Rājū in one 'Samaya'.

विग्रहगति में अनाहारक अवस्था
Non-assimilation State in Transmigration

एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ।।३०।।

(एकं द्वौ त्रीन् वा-अनाहारकः।)

Ekaṁ Dvau Trīnvā(a)nāhārakaḥ. (30)

शब्दार्थ : **एकं द्वौ त्रीन् वा –** एक, दो या तीन (समय); **अनाहारकः –** अनाहारक (रहता है)।

Meaning of Words : **Ekaṁ Dvau Trīn Vā -** one, two or three (Samaya); **Anāhārakaḥ -** without intake of No-karma particles.

सूत्रार्थ : विग्रहगति में जीव एक, दो या तीन समयों तक अनाहारक रहता है।

English Rendering : In the transmigratory state, a Jīva remains without intake of No-karma particles for one, two or three Samayas.

टीका : औदारिक, वैक्रियिक और आहारक नाम वाले तीन शरीर तथा आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन – ये छह पर्याप्तियाँ होती हैं। इन तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य नो–कर्म वर्गणाओं को ग्रहण करना आहार कहलाता है।

जो जीव इन तीन शरीरों में से उदय को प्राप्त होकर किसी एक शरीर के योग्य शरीर वर्गणाओं इत्यादि को ग्रहण करता है, वह आहारक कहलाता है। जिन जीवों के इस प्रकार का आहार यानी नो–कर्म के योग्य पुद्गलों का ग्रहण नहीं होता, उन्हें अनाहारक कहा जाता है।

कर्म के वश से बिना मोड़ेवाली जो पहली इषु–गति है, उसमें जीव आहारक ही रहता है। पाणिमुक्ता–गति में एक मोड़ा होने से एक समय अनाहारक रहता है। लाङ्गलिका–गति में दो मोड़ा होने से दो समय तक अनाहारक रहता है। गोमूत्रिका–गति में तीन मोड़ा होने से तीन समय तक अनाहारक रहता है। इस प्रकार निरन्तर रूप से अधिक से अधिक तीन समय तक जीव अनाहारक रह सकता है। चौथे समय में नियम से वह आहारक हो जाता है।

Comments : Three corporeal bodies are physical gross body (Audārika), transformative body (Vaikriyika) and translocational body (Āhāraka) and six 'Paryāpties' (i.e. capacity for full development of characteristics of the body) are Āhāra (intake of No-karma matter particles). Śarīra (body), Indriya (sense organs), Śvāsocchvāsa (respiration), Bhāṣā (speech) and Mana (mind). Āhāra is the taking in of the matter particles fit for any of the three kinds of the bodies and six kinds of the Paryāpties i.e. completion of body characteristics.

The souls bestowed with one of the three physical bodies depending on the corresponding fruition of karmas when receives No-karma

matter particles etc for completion of the characteristics of the body is known as Āhāraka. Those souls who do not receive such No-karma matter particles are known as 'Anāhārakas'.

Due to fruition of karmas, while transmigrating in the mode of 'Iṣu-gati' i.e. without bend, the soul assimilates matter particles as such, it is Āhāraka. In the mode of 'Pāṇimuktā-gati' with only one bend, the soul remains Anāhāraka i.e. without intake of matter particles for one 'Samaya'. In the mode of 'Lāṅgalikā-gati' with two bends, the soul remains without intake of matter particles for two 'Samayas'. In the mode of 'Gomūtrikā-gati' with three bends, the soul remains without intake of matter particles for three 'Samayas'. In this manner, a soul can remain continuously without intake of matter particles for the maximum period of three 'Samayas'. It, as a rule, takes matter particles in the fourth 'Samaya'.

जन्म के भेद
Kinds of Births

सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ।।३१।।

(सम्मूर्च्छन-गर्भ-उपपादाः जन्म।)

Sammūrcchanagarbhopapādā Janma. (31)

शब्दार्थ : **सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाः –** सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद; **जन्म –** जन्म (के भेद हैं)।

Meaning of Words : **Sammūrcchanagarbhopapādāḥ -** Sammūrcchana (spontaneous), Garbha (uterus) and Upapāda (instantaneous rise); **Janma -** (kinds of) birth.

सूत्रार्थ : सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद (देव और नारकी) – ये जन्म के भेद हैं।

English Rendering : The kinds of birth are spontaneous generation, from the uterus and from instantaneous rise i.e. rise from special beds & seats (for celestial beings & hellish beings).

टीका : जो स्वयमेव वातावरण में सब ओर से शरीर के योग्य पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण करके जीवों का जन्म होता है, वह सम्मूर्च्छन जन्म है। एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक सभी तिर्यञ्च और कोई-कोई सञ्ज्ञी और असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों और मनुष्यों का भी सम्मूर्च्छन जन्म होता है।

स्त्री के उदर में शोणित और शुक्र यानी रज और वीर्य के परस्पर मिश्रण को गर्भ कहते हैं। अथवा माता के द्वारा उपभुक्त आहार के गरण होने को गर्भ कहते हैं। इस गर्भ को ही शरीर रूप से ग्रहण करके जीवों का उत्पन्न होना गर्भ जन्म है। जरायुज, अण्डज और पोत – ये तीन गर्भ जन्म के भेद हैं। गर्भ जन्म केवल मनुष्य और तिर्यञ्च का ही होता है।

देव व नारकी जीवों के उत्पत्ति स्थान को उपपाद कहते हैं। अथवा उत्पत्ति स्थान में प्राप्त होकर जिसमें जीव हलन-चलन करता है, उसे उपपाद कहते हैं। देव गति में देवों का उपपाद-स्थान ढकी हुई शय्या के समान होता है, जहाँ जीव के सुन्दर शरीर की रचना अन्तर्मुहूर्त में हो जाती है। नारकी जीव पाप के उदय से ऊँट के मुख आदि आकृति वाले उपपाद-स्थानों में अत्यन्त कष्टपूर्वक जन्म लेते हैं।

Comments : Spontaneous birth is that wherein appropriate matter particles for formation of the body by a soul are collected automatically from the surrounding environment. All Tiryañcas from one sense organ to the five sense organs without the faculty of mind and some five sensed Tiryañcas with the faculty of mind and without faculty of mind and human beings also take spontaneous births.

The union of ovum and sperm in the womans' womb forming a fertilized ovum is called uterine birth. Or it is called uterine birth because of the mixing of the food taken by the mother. The formation of body by a Jīva through such a process is called 'Garbha Janma' or uterine birth. Uterine birth is of three types - 'Jarāyuja' (i.e. the membrane enveloping a foetus), 'Aṇḍaja' (born from an egg) and 'Pota' (foetus birth without any cover). Only human beings and Tiryañcas have uterine birth.

The seat in which the celestial beings and hellish beings are born is known as 'Upapāda'. Or on getting seat of birth, the soul starts

making movements is known as 'Upapāda'. The seat of birth in heaven is like a covered bed where formation of the body of a celestial being is completed in one Antarmuhūrta. The hellish beings, as a result of fruition of their demerit karmas take birth with extreme agony from the seat of birth akin to the mouth of a camel etc.

योनि के प्रकार
Types of Nuclei of Birth

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ।।३२।।

(सचित्त-शीत-संवृताः स-इतराः मिश्राः च-एकशः-तत्-योनयः।)

Sacittaśītasaṁvṛtāḥ Setarā Miśrāścaikaśastadyonayaḥ. (32)

शब्दार्थ : **सचित्तशीतसंवृताः –** सचित्त, शीत, संवृत; **सेतराः –** इनकी प्रतिपक्षभूत (अर्थात् अचित्त, उष्ण, विवृत); **मिश्राश्चैकशः –** एक-एक की मिश्र (अर्थात् सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, संवृत-विवृत); **तद्योनयः –** उस (जन्म) की योनियाँ हैं।

Meaning of Words : **Sacittaśītasaṁvṛtāḥ -** animate object, cold, covered; **Setarāḥ -** their opposites (i.e. inanimate objects, hot, uncovered); **Miśraścaikaśaḥ -** combination of each one (i.e. animate & in-animate object, cold & hot, covered & uncovered); **Tadyonayaḥ -** are the nuclei or birth-places.

सूत्रार्थ : सचित्त, शीत और संवृत तथा इनकी प्रतिपक्षभूत अचित्त, उष्ण और विवृत तथा मिश्र अर्थात् ये परस्पर मिलकर सचित्ताचित्त, शीतोष्ण और संवृतविवृत – ये (नौ) जन्म की योनियाँ हैं।

English Rendering : Animate object, cold and covered, opposite of these i.e. inanimate object, hot and uncovered and mix of these i.e. animate and inanimate matter, cold & hot, covered & uncovered or exposed are (nine) nuclei of birth.

टीका : जीवों के उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं। आत्मा के चैतन्य विशेष रूप परिणाम को चित्त कहते हैं। चित्त अर्थात् जीव सहित योनि को सचित्त योनि कहते

हैं। साधारण शरीरधारी जीव के सचित्त योनि होती है, क्योंकि वे एक दूसरे के आश्रय से रहते हैं।

जीव रहित योनि को अचित्त योनि कहते हैं। ऐसी योनि देव और नारकियों के होती है। जो सचित्त और अचित्त के मिश्र रूप है वह सचित्ताचित्त योनि होती है। गर्भज जीव इसी योनि से उत्पन्न होते हैं।

जो शीत गुणवाली है, वह शीत योनि है। जो उष्ण गुणवाली है, वह उष्ण योनि है। इसमें तैजसकायिक जीव उत्पन्न होते हैं। जो शीत और उष्ण गुणों से मिश्रित है, उसे शीतोष्ण योनि कहते हैं। देव और नारकियों की शीत और उष्ण दोनों प्रकार की योनियाँ होती हैं, क्योंकि उनके कुछ उपपाद स्थान शीत हैं और कुछ उष्ण हैं।

जो भले प्रकार ढकी हुई हो, उसे संवृत योनि कहते हैं। सभी देव, नारकी और एकेन्द्रिय जीव इस प्रकार की योनि में उत्पन्न होते हैं। जो भले प्रकार खुली हुई हो, उसे विवृत योनि कहते हैं। सभी विकलेन्द्रिय जीव इस प्रकार की योनि में उत्पन्न होते हैं। जो कुछ ढकी और कुछ खुली हो वह संवृतविवृत योनि कहलाती है। गर्भज जीव ऐसी योनि में उत्पन्न होते हैं।

योनि के मुख्य दो भेद हैं - गुण योनि एवं आकार योनि। गुण योनि के नौ भेद ऊपर बताये गये हैं। इसके उत्तर भेद 84 लाख होते हैं, जो निम्न प्रकार पाये जाते हैं -

नित्यनिगोद 7 लाख; इतरनिगोद 7 लाख; पृथिवीकायिक 7 लाख; जलकायिक 7 लाख; तैजसकायिक 7 लाख; वायुकायिक 7 लाख; वनस्पतिकायिक 10 लाख; विकलेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय सम्बन्धी प्रत्येक की 2-2 लाख - कुल 6 लाख; देव, नारकी और तिर्यञ्चों में प्रत्येक की चार-चार लाख - कुल 12 लाख और मनुष्य की 14 लाख।

आकार योनि के तीन भेद होते हैं - शङ्खावर्त योनि, कूर्मोन्नत योनि, और वंशपत्र योनि। शङ्खावर्त योनि में गर्भ नहीं रुकता। कूर्मोन्नत योनि में 63 शलाका पुरुष तथा अन्य सामान्य पुरुष उत्पन्न होते हैं तथा वंशपत्रयोनि में साधारण मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

Comments : Nuclei of birth or Yoni is the organ from where Jīvas take birth. 'Citta' means special or exceptional attributes of consciousness of a soul. The nuclei associated with consciousness is 'Sacitta Yoni' i.e. associated with soul. Living beings having a common body possess Sacitta Yoni as their survival is dependent on an other.

The nuclei without association of consciousness is known as 'Acitta Yoni'. Such nuclei are the places of birth of celestial beings and hellish beings. The nuclei with a mix of consciousness and without consciousness is known as 'Sacittācitta Yoni'. Those who take birth through uterus are from this mixed Yoni.

That nucleus which is of cold nature is the 'Śīta Yoni'. That which is of hot nature is 'Uṣṇa Yoni'. Taijasa Kāyika Jīvas take birth from this type of nucleus. That which is a mix of cold and hot is known as 'Śītoṣṇa Yoni'. Celestial beings and hellish beings possess both cold and hot nature of nuclei as some of them take birth from 'Śīta Yoni' and some from 'Uṣṇa Yoni'.

That which is fully covered is known as 'Saṁvṛta Yoni'. All celestial beings, hellish beings and one sensed beings take birth in this type of nucleus. That which is fully exposed is known as 'Vivṛta Yoni'. All souls having two to four sense organs take birth in this type of nucleus. That which is partly covered and partly exposed is known as 'Saṁvṛtavivṛta Yoni'. All uterine births take place in such type of nucleus.

Yoni or nuclei are mainly of two kinds - Guṇa Yoni and Ākāra Yoni. Nine kinds of Guṇa Yoni have been described above. These are further sub-divided in to 84 Lacs which are as under -

1. The one sensed Nitya Nigoda souls (lowest form of life with common body from eternity) - 7 Lacs nuclei; 2. The one sensed Itara Nigoda souls (lowest form of life with common body after taking birth in other life-courses) - 7 Lacs nuclei; 3. One sensed souls in the form of earth bodied, water bodied, fire bodied & air bodied - 7 Lacs nuclei each; 4. The plant & vegetable beings - 10 Lacs nuclei; 5. Two, three & four sensed beings 2 Lacs nuclei each, total 6 Lacs nuclei; 6. Celestial beings, hellish beings and Tiryañcas - 4 Lacs nuclei each total 12 Lacs; 7. Human beings - 14 Lacs nuclei.

Ākāra Yoni (shape of nuclei) is of three kinds - Śaṅkhāvarta Yoni (nucleus having conch like circles); Kūrmonnata Yoni (nucleus having raise like tortoise) and Vaṁśapatra Yoni (nucleus like leaves of bamboo tree). No conception takes place in 'Śaṅkhāvarta Yoni'. The 63 Śalākā Puruṣa (Great Personalities who are endowed with distinguished characteristics and are model for others) and other general persons take birth through Kūrmonnata Yoni and general persons through Vaṁśapatra Yoni.

गर्भजन्म के भेद
Kinds of Uterine Birth

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ।।३३।।

(जरायुज-अण्डज-पोतानां गर्भः।)

Jarāyujāṇḍajapotānāṁ Garbhaḥ. (33)

शब्दार्थ : **जरायुजाण्डजपोतानाम् –** जरायुज, अण्डज और पोत (जीवों) का; **गर्भः –** गर्भ (जन्म होता है)।

Meaning of Words : **Jarāyujāṇḍajapotānām -** born with a membrane enveloping a foetus, from an egg and foetus birth without any cover; **Garbhaḥ -** (is) uterine birth.

सूत्रार्थ : गर्भजन्म जरायुज, अण्डज और पोत – ये तीन प्रकार से होता है।

English Rendering : Uterine birth is of three kinds - with a membrane enveloping a foetus, from an egg and foetus birth without any cover.

टीका : जाली के समान मांस और खून से व्याप्त एक प्रकार की थैली या आवरण से लिपटे हुए जो जीव जन्म लेता है, उसे जरायुज कहते हैं। जैसे – गाय, भैंस, मनुष्य आदि। जो नख की त्वचा के समान कठिन है, गोल है और जिसका आवरण शुक्र और शोणित से बना है और जो अण्डों से जन्म लेते हैं, उनको अण्डज कहते हैं। जैसे – चिड़िया, कबूतर, मोर इत्यादि। उत्पन्न होते समय जिन जीवों के शरीर के ऊपर किसी प्रकार का आवरण नहीं रहता, उन्हें पोत कहते हैं। जैसे – सिंह, बाघ, हाथी, हिरण, बन्दर आदि।

असाधारण भाषा, अध्ययन आदि जरायुज जीवों में ही होता है। चक्रधर, वासुदेव आदि महाप्रभावशाली पुरुष जरायुज होते हैं और मोक्ष भी जरायुज को ही प्राप्त होता है।

Comments : Living beings who are born with the container or covering occupied with flesh and blood like a net are called 'Jarāyuja'.

For instance cow, buffalo, human being etc. The covering which is hard like skin of nails, is like a globe shape and the exterior is made of the mix of sperm and ovum, is the egg and those who take birth from egg are called 'Aṇdaja'. For instance sparrow, pigeon, peacock etc. Those having no cover at the time of birth are known as 'Pota'. For instance lion, tiger, elephant, deer, monkey etc.

Only Jarāyuja Jīvas possess the power of extra-ordinary language, study etc. Only Jarāyuja Jīvas become great personage like Cakradhara, Vāsudeva etc. and they alone attain salvation.

उपपाद जन्म
Birth By Instantaneous Rise

देवनारकाणामुपपादः।।३४।।

(देव-नारकाणाम् उपपादः।)

Devanārakāṇāmupapādaḥ. (34)

शब्दार्थ : **देवनारकाणाम् –** देव और नारकियों का; **उपपादः –** उपपाद (जन्म होता है)।

Meaning of Words : **Devanārakāṇām -** of celestial beings & hellish beings; **Upapādaḥ -** birth from a special seat (bed).

सूत्रार्थ : देव और नारकियों का उपपाद जन्म होता है।

English Rendering : The birth of celestial beings and infernal beings is by rise from a special seat (bed).

टीका : देवों के उत्पत्ति-स्थान में शुद्ध, सुगन्धित, कोमल, सम्पुट के आकारवाली शय्या होती है। उसमें देव उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त में परिपूर्ण होकर युवावत् हो जाते हैं। जैसे – कोई जीव शय्या से सोकर जागता है, उसी प्रकार आनन्द सहित वह जीव बैठा होता है। यही देवों का उपपाद जन्म है।

नारकी जीव बिलों में उत्पन्न होते हैं। मधुमक्खी के छत्ते की भाँति औंधा मुँह किये हुए इत्यादि आकार के विविध मुख वाले उत्पत्ति स्थान हैं, उनमें नारकी जीव उत्पन्न होते हैं।

Comments : The place of birth of celestial beings is a special bed which is pure, fragrant, soft and like a spherical box. The celestial beings take birth in such beds and in a period of one Antarmuhūrta, they attain full adult-hood like a youth. After birth, these living beings sit as happily and comfortably as if they have risen after sound sleep. This is the Upapāda Janma of the celestial beings.

Hellish beings get birth in holes (Bilas). Their birth places are similar to bee-hive with their different kinds of mouths turned down etc. having painful origination.

सम्मूर्च्छन जन्म
Spontaneous Birth

शेषाणां सम्मूर्च्छनम्।।३५।।

Śeṣāṇāṁ Sammūrcchanam. (35)

शब्दार्थ : **शेषाणाम् –** शेषों (जीवों) का; **सम्मूर्च्छनम् –** सम्मूर्च्छन (जन्म होता है)।

Meaning of Words : **Śeṣāṇām -** of the remaining (souls); **Sammūrcchanam -** sammurcchana (spontaneous) birth (takes place).

सूत्रार्थ : शेष जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म होता है।

English Rendering : The birth of the remaining Jīvas is by spontaneous generation.

टीका : गर्भज और उपपाद जन्मवाले जीवों को छोड़कर शेष का सम्मूर्च्छन जन्म होता है। सभी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, कोई पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का सम्मूर्च्छन जन्म होता है।

Comments : Spontaneous generation is the mode of birth for all other Jīvas except the ones who take birth through uterine and from instantaneous rise. All one-sensed, two-sensed, three-sensed, four-sensed and some five-sensed Tiryañcas and all human beings who are incapable of completion of their basic characteristics of body (Labdhyaparyāptaka) take their birth through spontaneous generation.

संसारी जीवों के शरीर
Bodies of Mundane Beings

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ।।३६।।

(औदारिक-वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कार्मणानि शरीराणि।)

Audārikavaikriyikāhārakataijasakārmaṇāni Śarīrāṇi. (36)

शब्दार्थ : **औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि –** औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण; **शरीराणि –** (ये पाँच) शरीर (हैं)।

Meaning of Words : **Audārikavaikriyikāhāra-kataijasakārmaṇāni -** gross, transformable, translocational, electric and kārmaṇa; **Śarīrāṇi -** (are these five) bodies.

सूत्रार्थ : औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण – ये पाँच प्रकार के शरीर होते हैं।

English Rendering : The five kinds of bodies are the gross, the transformative, the translocational, the electric and the kārmaṇa.

टीका : जो विशेष नामकर्म के उदय से प्राप्त होकर शीर्यन्ते अर्थात् गलते हैं, वे शरीर हैं। मनुष्य और तिर्यञ्चों के शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

अणिमा आदि आठ गुणों के ऐश्वर्य के सम्बन्ध से एक-अनेक, छोटा-बड़ा आदि नाना प्रकार का शरीर बनाना विक्रिया है। विक्रिया जिस शरीर का प्रयोजन है वह वैक्रियिक शरीर है। देव और नारकियों के वैक्रियिक शरीर होता है।

सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान करने के लिये या असंयम को दूर करने की इच्छा से प्रमत्तसंयत मुनि जिस शरीर की रचना करता है, वह आहारक शरीर है। अथवा, सूक्ष्म पदार्थ के निर्णय के लिये या संयम की रक्षा के लिये छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि के मस्तक से एक हाथ का जो सफेद रंग का पुतला निकलता है, उसे आहारक शरीर कहते हैं।

जो दीप्ति का कारण है या तेज में उत्पन्न होता है, उसे तैजस शरीर कहते हैं। यह सभी संसारी जीवों में पाया जाता है।

कर्मों के कार्य या कर्मों के समूह को कार्मण शरीर कहते हैं। यह भी सभी संसारी जीवों में पाया जाता है।

Comments : That which gets decayed as a result of rise of different kinds of Nāma Karma is termed as body. The bodies of human beings and Tiryañcas are called 'Audārika' or gross.

The body of the livings beings endowed with eight kinds of supernatural powers like 'Aṇimā' etc., is capable of becoming one or many or infinitesimal or huge. This is called 'Vikriyā' or transformation. The body, having transformation as its object is known as 'Vaikriyika Śarīra' or transformable body. The bodies of celestial beings and hellish beings are transformable ones.

The translocational body or Āhāraka Śarīra is that which is originated by an ascetic positioned in non-restraint stage (in sixth stage of spiritual development) in order to resolve a doubt about intricate interpretation of religion or to dispel non-restraint. Or the origination of a white image of one cubit height from the forehead of the ascetic in sixth stage of spiritual development for resolution of a doubt or protection of his restraint is called Āhāraka Śarīra or projectable body or translocational body.

The body which is the cause of brilliance or which is caused by brilliance is the luminous or electric body. It is possessed by all mundane beings.

The body composed of kārmic matter or the act of kārmic matter is called Kārmaṇa Śarīra. This is also possessed by all mundane beings.

शरीरों का आकार
Form of Mundane-bodies

परं परं सूक्ष्मम् ।।३७।।

Paraṁ Paraṁ Sūkṣmam. (37)

शब्दार्थ : **परं परम् –** आगे-आगे का (शरीर); **सूक्ष्मम् –** सूक्ष्म (है)।

Meaning of Words : **Paraṁ Param -** each successive (body); **Sūkṣmam -** (is) finer (subtle).

सूत्रार्थ : पहले कहे हुए शरीरों की अपेक्षा आगे-आगे के शरीर सूक्ष्म-सूक्ष्म होते हैं।

English Rendering : Bodies described successively are more & more subtle as compared with those of proceeding ones.

टीका : इस सूत्र में पूर्वोक्त पाँच शरीरों के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है कि औदारिक शरीर की अपेक्षा वैक्रियिक शरीर सूक्ष्म है; वैक्रियिक शरीर की अपेक्षा आहारक शरीर सूक्ष्म है; आहारक शरीर की अपेक्षा तैजस शरीर सूक्ष्म है और तैजस शरीर की अपेक्षा कार्मण शरीर सूक्ष्म है।

Comments : In this Sūtra description of five kinds of bodies described earlier is given stating that the transformative body is finer than the gross body; translocational or projectable body is finer than the transformative body, the luminous body is finer than the translocational body and Kārmaṇa body is finer than the luminous body.

शरीरों के प्रदेश
Space-points of Bodies

प्रदेशतोऽसङ्ख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ।।३८।।

(प्रदेशतः असङ्ख्येय-गुणं प्राक् तैजसात्।)

Pradeśato(a)saṅkhyeyaguṇaṁ Prāk Taijasāt. (38)

शब्दार्थ : **प्रदेशतः –** प्रदेशों की अपेक्षा से; **असङ्ख्येयगुणम् –** असङ्ख्यात गुणा; **प्राक् तैजसात् –** तैजस (शरीर) से पहले-पहले (के शरीर होते हैं)।

Meaning of Words : **Pradeśataḥ -** from space-points view; **Asaṅkhyeyaguṇam -** in-numerable times; **Prāk Taijasāt -** prior to the electric (luminous) body.

सूत्रार्थ : तैजस शरीर से पूर्व के तीनों शरीर प्रदेशों की अपेक्षा परस्पर में असङ्ख्यात गुणे – असङ्ख्यात गुणे प्रदेशवाले होते हैं।

English Rendering : The three bodies prior to the electric (luminous) body, on consideration of number of space-points, consist of in-numerable times more space-points in comparision with its previous one.

टीका : औदारिक शरीर से वैक्रियिक शरीर में असङ्ख्यात गुणे प्रदेश होते हैं और वैक्रियिक शरीर से आहारक शरीर में असङ्ख्यात गुणे प्रदेश होते हैं। औदारिक आदि शरीरों में उत्तरोत्तर प्रदेशों की अधिकता होने पर भी उनके संगठन में लौह पिण्ड के समान घनत्व होने से सूक्ष्मता है और पूर्व-पूर्व के शरीर में प्रदेशों की न्यूनता होने पर भी रुई के ढेर के समान शिथिलत्व होने से स्थूलता है, ऐसा जानना चाहिए।

Comments : The number of space-points in the transformative body are in-numerable times more than in the gross body and in projectable (translocational) body, these are in-numerable times more than in transformative body. Although there is a gradual increase in space-points in the succeding bodies in comparision to the gross body, they are finer comparatively due to their density like a lump of iron and there is comparative gross-ness in the previous bodies, it should be known like heap of cotton.

अन्तिम दो शरीरों के प्रदेश
Space-points of Last Two Bodies

अनन्तगुणे परे ।।३९।।

Anantaguṇe Pare. (39)

शब्दार्थ : **अनन्तगुणे –** अनन्त गुणा (प्रदेशवाले); **परे –** आगे के दो (शरीर परस्पर में होते हैं)।

Meaning of Words : **Anantaguṇe -** infinite times (space-points); **Pare -** remaining two bodies.

सूत्रार्थ : आगे के दो शरीर अनन्तगुणे प्रदेशवाले हैं।

English Rendering : Each of the next two bodies consists of infinite times more space-points.

टीका : यहाँ पर शेष दो शरीर अर्थात् तैजस और कार्मण शरीर में अपेक्षाकृत प्रदेशों की संख्या का वर्णन है। आहारक शरीर की अपेक्षा तैजस शरीर में अनन्तगुणे प्रदेश हैं और तैजस शरीर की अपेक्षा कार्मण शरीर में अनन्तगुणे प्रदेश हैं।

Comments : In the remaining two kinds of bodies i.e. luminous or electric body & Kārmaṇa body, there is a comparative description in respect of space-points. Luminous body has infinite times more space-points as compared to that in projectable body and Kārmaṇa body has infinite times more space-points than that in luminous body.

अन्तिम दो शरीरों की विशेषता
Speciality of Last Two Bodies

अप्रतीघाते ।।४०।।

Apratīghāte. (40)

शब्दार्थ : **अप्रतीघाते –** (अन्तिम दोनों शरीर) प्रतिघात से रहित (हैं)।

Meaning of Words : **Apratīghāte -** (last two bodies) are free from impediments.

सूत्रार्थ : अन्तिम दोनों शरीर – तैजस और कार्मण प्रतिघात से रहित हैं।

English Rendering : The last two kinds of bodies i.e. luminous (or electric) & Kārmaṇa are free from impediments.

टीका : एक मूर्तिक पदार्थ का दूसरे मूर्तिक पदार्थ के द्वारा जो व्याघात होता है, उसे प्रतीघात कहते हैं।

सूक्ष्म परिणमन होने से लौह पिण्ड में अनुप्रविष्ट अग्नि के समान तैजस और कार्मण शरीर हैं। जैसे अग्नि सूक्ष्म परिणमन के कारण लोहे के पिण्ड में घुस जाती है, उसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीर का वज्रपटलादि में भी व्याघात नहीं होता। अर्थात् इन दोनों शरीरों की रुकावट या टक्कर किसी भी पदार्थ से नहीं होती। इसलिये इन दोनों शरीरों को अप्रतीघात कहा गया है। अप्रतीघात होने से ये दोनों शरीर सब जगह प्रवेश कर जाते हैं। आहारक और वैक्रियिक शरीर भी सूक्ष्म हैं, लेकिन वे अपनी-अपनी सीमा में ही अप्रतीघाती हैं, सर्व लोक में नहीं। जबकि तैजस और कार्मण शरीर सर्वत्र अप्रतीघाती हैं।

Comments : The obstruction of one substance having a shape and form by another substance having a shape and form is called 'Pratīghāta' or impediment.

The luminous body and Kārmaṇa bodies are of fine transformable nature just like heat entering a lump of iron. Just as heat enters lump of iron due to its fine transformation, similarly there is no impediment in the transit of luminous and Kārmaṇa bodies through admantine sphere etc. It means that these two kinds of bodies do not meet any obstacle or hit any other substance. As such both these bodies are termed as free from impediments. Being without impediments, these bodies enter everywhere. Translocational and transformable bodies are also fine bodies but these are free from impediments only within their limits and not in the entire universe; whereas luminous or electrical and Kārmaṇa bodies are without impediments everywhere.

अन्तिम दो शरीरों का अनादि सम्बन्ध
Beginning-less Association of Last Two Bodies

अनादिसम्बन्धे च ।।४१।।

Anādisambandhe Ca. (41)

शब्दार्थ : **अनादिसम्बन्धे –** (इन अन्तिम दोनों शरीरों का आत्मा से) अनादि से सम्बन्ध; **च –** और (सादि भी है)।

Meaning of Words : **Anādisambandhe -** (both of these last bodies) have beginningless association (with the soul); **Ca -** and (this association has beginning also).

सूत्रार्थ : तैजस और कार्मण शरीर का सम्बन्ध आत्मा के साथ अनादिकाल से है और सादि सम्बन्ध भी है।

English Rendering : Electric and Kārmaṇa bodies have association with the soul from beginningless times and their association is with a beginning also.

टीका : इन दोनों शरीरों का आत्मा से सम्बन्ध कार्य-कारण से बन्ध-सन्तति की अपेक्षा अनादि सम्बन्ध है। और विशेषतः बीज-वृक्ष के समान सादि सम्बन्ध भी है। यद्यपि इनका आत्मा से सम्बन्ध अनादिकाल से है, लेकिन उनमें समय-समय पर पुराने पुद्गल क्षय होते रहते हैं और नये उत्पन्न होते रहते हैं, इसलिये यह सम्बन्ध सादि भी है।

Comments : The association of these two bodies with the soul is beginningless in the context of cause and effect of bondage and rebondage and also it is with a beginning as in the case of the seed and the tree. Although the association with the soul is from the beginningless times but there is a continuous decay of the old matter particles and origination of new ones, as such the association is having a beginning also.

अन्तिम दो शरीरों के स्वामी
Owner of the Last Two Bodies

सर्वस्य ।।४२।।

Sarvasya. (42)

शब्दार्थ : **सर्वस्य –** सब (संसारी जीवों) के।

Meaning of Words : **Sarvasya -** of all mundane beings.

सूत्रार्थ : तैजस और कार्मण शरीर संसार के सभी जीवों में पाये जाते हैं।

English Rendering : Electric or luminous & Kārmaṇa bodies are possessed by all mundane beings.

टीका : सभी संसारी जीवों के तैजस और कार्मण शरीर पाया जाता है। केवल सिद्ध जीव ही इनसे मुक्त होते हैं।

Comments : The luminous & Kārmaṇa bodies are possessed by all mundane beings; only the liberated souls are free from these bodies.

एक साथ होने वाले शरीर
Simultaneous Possession of Bodies

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः।।४३।।

(तत्-आदीनि भाज्यानि युगपत्-एकस्मिन्-आ-चतुर्भ्यः।)

Tadādīni Bhājyāni Yugapadekasminnācaturbhyaḥ. (43)

शब्दार्थ : **तदादीनि –** उन (दोनों) को आदि लेकर; **भाज्यानि –** भजनीय है या जानना चाहिए; **युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः –** एक साथ एक (आत्मा) में चार शरीर तक।

Meaning of Words : **Tadādīni -** along with those two bodies (i.e. electric & Kārmaṇa); **Bhājyāni -** worth knowing; **Yugapadekasminnācaturbhyaḥ -** at a time one (soul) can have four kinds of bodies.

सूत्रार्थ : एक आत्मा के एक साथ (तैजस और कार्मण) दो शरीरों के साथ चार शरीर तक हो सकते हैं।

English Rendering : A soul can have four kinds of bodies at a time including the electric & Kārmaṇa bodies.

टीका : प्रत्येक संसारी जीव के साथ तैजस और कार्मण शरीर रहते हैं, ऐसा उल्लेख सूत्र 42 की टीका में किया जा चुका है। इस सूत्र में यह बतलाया जा रहा है कि एक आत्मा के एक साथ अधिकतम चार शरीर तक विकल्प से हो सकते हैं। यदि तीन शरीर होंगे तो तैजस, कार्मण एवं औदारिक शरीर, अथवा तैजस, कार्मण और वैक्रियिक शरीर होंगे। यदि चार शरीर होंगे तो तैजस, कार्मण, औदारिक और आहारक शरीर ही होंगे। आहारक शरीर तो औदारिक शरीरधारी छठवें गुणस्थानवाले मुनियों में से किसी-किसी को ही होता है (देखें, सूत्र 36 की टीका)। वैक्रियिक शरीर, जो देव और नारकियों के होता है, के साथ आहारक शरीर नहीं होता।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि औदारिक शरीर के साथ विक्रिया, जो तैजसकायिक, वायुकायिक एकेन्द्रिय जीवों, किन्हीं-किन्हीं पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों एवं मनुष्यों को प्राप्त हो जाती है, उसका यहाँ ग्रहण नहीं किया गया है। जिन जीवों के औदारिक शरीर ही विक्रियात्मक होते हैं वे जीव एकत्व और पृथक् विक्रिया के द्वारा भी परिणमन करते हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और सोलह स्वर्ग के देवों के दोनों प्रकार की विक्रिया होती है। इनसे ऊपर ग्रैवेयक से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक के देवों के प्रशस्त एकत्व विक्रिया ही होती है। नारकी केवल एकत्व विक्रिया ही कर सकते हैं। भोगभूमियाँ मनुष्य-तिर्यञ्च और चक्रवर्ती पृथक् विक्रिया भी करते हैं, परन्तु इस प्रकार के शरीर का यहाँ ग्रहण नहीं है, क्योंकि इसमें नाना गुण और ऋद्धियों का अभाव है। यहाँ नाना गुण और ऋद्धियों से युक्त वैक्रियिक शरीर का ही ग्रहण किया गया है, क्योंकि वह देव-नारकियों के ही होता है। किन्हीं-किन्हीं ग्रन्थों में 'युगपदेकस्या' भी पाठ उपलब्ध होता है।

Comments : In the commentary of Sūtra 42, it is stated that each and every mundane being possesses luminous and Kārmaṇa bodies. In this Sūtra, it is stated that a soul can have possibly maximum four bodies at a time. If there are three bodies, these could be either luminous, Kārmaṇa and gross or luminous, Kārmaṇa and transformatable bodies. If there are four, these could be only luminous, Kārmaṇa, gross and translocational bodies. The translocational body is possessed only by a few ascetics dwelling in the sixth stage of spiritual development, (see comments of Sūtra 36). The translocational body is not possessed by celestial beings or hellish beings, though they have transformable bodies.

It is to be particularly noted that here the context is not that of transformable supernatural power which is acquired with gross body

by Taijasa bodied & air bodied one-sense beings and also by a few five sensed Tiryañcas & human beings. Those whose gross bodies are having power of transformation, they transform both by their own bodies as well as separately. Bhavanavāsī, Vyantara, Jyotiska and heavenly beings up to sixteen heavens transform both ways whereas higher heavenly beings of Graiveyakas up to Sarvārthasiddhi do only auspicious body transformations. Hellish beings can transform only their bodies. Human beings of Bhoga-bhūmi (pleasure-lands) and Cakravartī have powers to transform separate from their own bodies. But here mention is not in that context because such transformations are not as a result of any supernatural powers and virtues. Here the mention is of transformable bodies possessed by celestial beings & hellish beings whose bodies are endowed with many virtues and supernatural powers. In some scriptures, the text is found to contain 'Yugapadekasyā'.

अन्तिम शरीर उपभोग रहित
Last Body is devoid of Mundane-Enjoyment

निरुपभोगमन्त्यम् ।।४४।।

(निरुपभोगम्-अन्त्यम्।)

Nirupabhogamantyam. (44)

शब्दार्थ : **निरुपभोगम् –** उपभोग से रहित; **अन्त्यम् –** अन्त का (यानी कार्मण शरीर)।

Meaning of Words : Nirupabhogam - devoid of mundane enjoyment; **Antyam -** last body (i.e. Kārmaṇa body).

सूत्रार्थ : अन्तिम कार्मण शरीर उपभोग से रहित है।

English Rendering : Last kind of body i.e. Kārmaṇa body is devoid of mundane enjoyment.

टीका : इन्द्रियों के निमित्त से शब्द आदि की उपलब्धि होती है, उसे उपभोग कहते हैं। अथवा इन्द्रिय प्रणालिका के द्वारा शब्द-रस आदि की उपलब्धि (ग्रहण)

को उपभोग कहते हैं। अन्त में होने वाला 'अन्त्य' कहलाता है। यहाँ 'अन्त्य' का अर्थ कार्मण शरीर से है। यद्यपि विग्रहगति में भी आत्मा के साथ सत्ता रूप से कार्मण शरीर रहता है, तथापि द्रव्येन्द्रिय की रचना का अभाव होने से यह कार्मण शरीर शब्द आदि विषयों को ग्रहण नहीं करता। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भले ही कार्मण शरीर की भाँति तैजस शरीर भी निरुपभोग है, पर यहाँ उसका उल्लेख नहीं है, क्योंकि योग में तैजस शरीर निमित्त नहीं होता। इसलिये वह उपभोग में निमित्त नहीं हो सकता।

Comments : The gain of word etc. through the sense organs or channel of senses is called (of non-consumable things) enjoyment. That which comes at the end is 'Antya' or the last one. Here it means Kārmaṇa body. Although in the transmigration state, the soul is passessed with Kārmaṇa body but due to absence of physical sense organs, the soul does not receive word etc. Here it may also be noted that although like Kārmaṇa body, the luminous body is also not the means of enjoyment but the same is not taken into account as it does not contribute into Yoga (i.e. activities of mind, speech & body) and as such it can not be a cause in enjoyment also.

औदारिक शरीर की उत्पत्ति
Origination of Gross-body

गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ।।४५।।

(गर्भ-सम्मूर्च्छनजम्-आद्यम्।)

Garbhasammūrcchanajamādyam. (45)

शब्दार्थ : **गर्भसम्मूर्च्छनजम् –** गर्भ जन्म एवं सम्मूर्च्छन जन्म से; **आद्यम् –** आदि का अर्थात् औदारिक शरीर (उत्पन्न होता है)।

Meaning of Words : **Garbhasammūrcchanajam -** uterine birth and spontaneous generation; **Ādyam -** first kind of body i.e. gross.

सूत्रार्थ : गर्भ जन्म से और सम्मूर्च्छन जन्म से औदारिक शरीर उत्पन्न होता है।

English Rendering : Those living beings taking birth with uterine and by spontaneous generation possess the gross body.

टीका : सभी औदारिक शरीर गर्भ जन्म से या सम्मूर्च्छन जन्म से ही पैदा होते हैं। औदारिक शरीर के स्वामी केवल मनुष्य और तिर्यञ्च ही होते हैं।

Comments : All gross bodied are born either by an uterine birth or spontaneous generation. Only human beings and Tiryañcas are bestowed with gross bodies.

वैक्रियिक शरीर की उत्पत्ति
Origination of Transformable Body

औपपादिकं वैक्रियिकम् ।।४६।।

Aupapādikaṁ Vaikriyikam. (46)

शब्दार्थ : **औपपादिकम्** – उपपाद जन्म से उत्पन्न (होता है); **वैक्रियिकम्** – वैक्रियिक शरीर।

Meaning of Words : **Aupapādikam -** instantaneous birth of infernal beings & celestial deities; **Vaikriyikam -** transformable body.

सूत्रार्थ : उपपाद जन्म से वैक्रियिक शरीर उत्पन्न होता है।

English Rendering : Transformable body originates by instantaneous birth from seat or bed (of infernal beings and celestial deities).

टीका : वैक्रियिक शरीर उपपाद जन्मवाले जीवों का होता है। सभी देव और नारकी उपपाद जन्मवाले होते हैं।

Comments : The transformable body is possessed only by those living beings who take birth by instantaneous rise. All celestial beings and hellish beings take their births in this manner.

लब्धिप्रत्ययं च ।।४७।।

Labdhipratyayaṁ Ca. (47)

शब्दार्थ : **लब्धिप्रत्ययं च –** (एवं प्राप्त) लब्धि निमित्त से भी (वैक्रियिक शरीर होता है)।

Meaning of Words : **Labdhipratyayaṁ Ca -** (transformable body) could also be attained by special attainments (as a result of penances).

सूत्रार्थ : वैक्रियिक शरीर की प्राप्ति लब्धि निमित्त से भी होती है।

English Rendering : Transformable body is also attained by special austerities.

टीका : तप की विशेषता से प्राप्त होने वाली ऋद्धि को लब्धि कहते हैं। प्रत्यय का अर्थ निमित्त है। किसी-किसी तिर्यञ्च को भी विक्रिया करने की क्षमता प्राप्त हो जाती है, लेकिन मनुष्य और तिर्यञ्च का वैक्रियिक शरीर देव और नारकी के वैक्रियिक शरीर से भिन्न होता है, क्योंकि वह तो औदारिक शरीर से ही सम्बन्धित है।

विक्रिया दो प्रकार की होती है – एकत्व विक्रिया और पृथक्त्व विक्रिया। अपने शरीर की अपृथक् रूप में सिंह, हंस, कुत्ता आदि की रचना करना एकत्व विक्रिया है। अपने शरीर से भिन्न प्रासाद, मण्डप आदि की रचना करना पृथक्त्व विक्रिया है।

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और सोलहवें स्वर्ग तक के वैमानिक देवों के द्वारा दोनों प्रकार की विक्रियायें होती हैं। उससे ऊपर वाले ग्रैवेयक के देवों से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक के देवों की प्रशस्त रूप में एकत्व विक्रिया ही करते हैं। नारकियों के पृथक्त्व विक्रिया नहीं होती।

तिर्यञ्चों में मयूर आदि के कुमारादि भावरूप प्रति विशिष्ट एकत्व विक्रिया होती है। तिर्यञ्चों के पृथक् विक्रिया नहीं होती। तप एवं विद्या आदि के प्राधान्य से मनुष्य के प्रति- विशिष्ट एकत्व विक्रिया एवं पृथक्त्व विक्रिया होती है।

बादर तैजसकायिक और वायुकायिक तथा सञ्ज्ञी पर्याप्तक पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च एवं मनुष्य, भोगभूमिज तिर्यञ्च और मनुष्य भी अपने औदारिक शरीर के द्वारा विक्रिया करते हैं।

Comments : 'Labdhi' is attainment of supernatural powers as a result of particular special kinds of penance. 'Pratyaya' means instrumental cause. Some Tiryañcas also attain the capability of transformation. But the physical body of the human beings and Tiryañcas is different from the transformable body of celestial beings and hellish beings. These activities (i.e. of transformation by human beings & Tiryañcas) are related to the gross body only.

Transformation is of two types - transformation of one's own body (i.e. Ekatva) and transformation of making different forms of body at different places at a time while original body remains at the original place (i.e. Pṛthaktva). To transform one's own body as a lion, a swan, a dog etc. is 'Ekatva Vikriyā'. To transform some thing other than his body in to a palace, a pavilion etc. is 'Pṛthaktva Vikriyā'.

Bhavanavāsī (residential). Vyantara (peripatetic), Jyotiska (stellar) and celestial beings upto sixteenth heaven are capable of both types of transformations. Higher up celestial beings from 'Graiveyaka' to 'Sarvārthasiddhi' perform only auspicious 'Ekatva Vikriyā'. Hellish beings are not capable of performing 'Pṛthaktva Vikriyā'.

Amongst 'Tiryañcas', peacocks etc. do 'Ekatva Vikriya' in the form of psychic youth like thoughts etc. and physical form. As a result of penance and special knowledge etc. (for attainment of special powers), human beings could have both types of transformation i.e. 'Ekatva' as well as 'Pṛthaktva Vikriyā'.

Gross 'Tejasakāyika' and air-bodied and those Tiryañcas and human beings who have completed their physical characteristics and are bestowed with mind and human beings & Tiryañcas belonging to Bhogabhūmī i.e. pleasure lands also do transformation of their gross-bodies.

तैजसमपि ।।४८।।

(तैजसम्-अपि।)

Taijasamapi. (48)

शब्दार्थ : **तैजसम् –** तैजस (शरीर); **अपि –** भी (लब्धि निमित्तक होता है)।

Meaning of Words : **Taijasam -** luminous or electric body; **Api -** also (attainment by special austerities).

सूत्रार्थ : तैजस शरीर भी लब्धि के निमित्त से प्राप्त होता है।

English Rendering : The luminous or electric body is also attained by special austerities.

टीका : लब्धि यानी तप विशेष से प्राप्त होने वाली ऋद्धि है। इस लब्धि से प्राप्त होने वाला तैजस शरीर दो प्रकार का होता है – निस्सरणात्मक तैजस शरीर और अनिस्सरणात्मक तैजस शरीर।

जो मुनि के मूल शरीर से बाहर निकलकर अनुग्रह या विनाश करने में समर्थ हो, वह निस्सरणात्मक तैजस शरीर है। निस्सरणात्मक शरीर दो प्रकार के होते हैं – प्रशस्त तैजस शरीर और अप्रशस्त तैजस शरीर। औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीरों में दीप्ति देने वाला अनिस्सरणात्मक तैजस शरीर है। यह शरीर भुक्त अन्न-पान आदि का पाचक होकर भीतर स्थित रहता है।

प्रशस्त या शुभ तैजस शरीर उग्र चारित्र वाले यति के दाहिने कन्धे से निकलता है। यह सफेद रङ्ग का, हंस या शङ्ख के वर्ण वाला, सौम्य आकृति वाला, मूल शरीर को न त्याग कर यानी मूल शरीर से सम्बन्ध बनाए रखकर बारह योजन लम्बाई और नौ योजन चौड़ाई में रोग, दुर्भिक्ष आदि का शमन कर, सभी जीवों को सुख उत्पन्न कर, फिर अपने मूल स्थान में प्रवेश कर संयत मुनि को सुख उत्पन्न करता है।

उग्र चारित्र वाला यति किसी के द्वारा अपमानित होने पर जब क्रोधित हो जाता है, तब उसके बायें कन्धे से जीव प्रदेश सहित बिलाव के आकार का पुतला बाहर

निकलता है। बारह योजन लम्बा और नौ योजन चौड़ा जलते हुए अग्नि-पुञ्ज के समान जाज्वल्यमान, सिन्दूर के समान लाल रंग वाला यह अप्रशस्त या अशुभ तैजस शरीर उतने क्षेत्र के जलाने योग्य वस्तुओं को परिवेष्टित कर जितनी देर तक रहता है, बाह्य वस्तुओं को भस्म करता है, पुनः लौटकर यति के शरीर में प्रवेश कर यति का भी विनाश कर देता है। कुछ आचार्यों के अनुसार यति का विनाश नहीं भी करता है।

Comments : 'Ṛddhi' is attainment as a result of special penances. Luminous or electric body attained as a result of such attainment is of two kinds - 'Nissaraṇātmaka Taijasa Śarīra' and 'Anissaraṇātmaka Taijasa Śarīrā'.

The body which emits from the original body of the ascetic and is capable of bestowing boon or causing destruction is 'Nissaraṇātmaka Taijasa Śarīra'. 'Nissaraṇātmaka Śarīra' is of two kinds - auspicious luminous body and inauspicious luminous body. The body which imparts luster to gross, transformative and projectable bodies is 'Anissaraṇātmaka Taijasa Śarīra'. It remains within the body and acts as a digestive cause of the food intake.

Auspicius luminous body emits an image from the right-shoulder of an erudite monk with extra-ordinary conduct. It is of white colour similar to the colour of a swan or a conch-shell, has amiable appearance, without loosing contact with the original body supresses or eradicates all kinds of disease, famine etc. in an area measuring twelve Yojana long and nine Yojana wide and after pleasing all living beings returns to the original place in the body of the erudite monk to please him.

If a Yati i.e. ascetic (with fierce temprament but with supernatural powers) being humiliated by someone gets angry, an image of a cat-shape emits from his left-shoulder with space points of the soul; it is radiant like a ball of fire having vermilion colour, spreads in an area of twelve Yojana in length and nine Yojana in width and destroys every thing by burning during the period it remains outside. After completely destroying the area by burning, it returns to the original body of the erudite monk and destroys the monk also. Some Ācāryas are of the opinion that it may not harm the monk.

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ।।४९।।

(शुभं विशुद्धं-अव्याघाति च-आहारकं प्रमत्त-संयतस्य-एव।)

Śubhaṁ Viśuddhamavyāghāti Cāhārakaṁ
Pramattasaṁyatasyaiva. (49)

शब्दार्थ : **शुभम् –** शुभ; **विशुद्धम् –** विशुद्ध; **अव्याघाति –** व्याघात से रहित; **च –** और; **आहारकम् –** आहारक (शरीर); **प्रमत्तसंयतस्यै –** प्रमत्तसंयत के ही (होता है)।

Meaning of Words : **Śubham -** auspicious; **Viśuddham -** pure; **Avyāghāti -** free from impediments; **Ca-** and; **Āhārakam -** translocational body; **Pramattasaṁyatasyaiva -** originates only by the monk in the sixth stage of spiritual development.

सूत्रार्थ : आहारक शरीर शुभ, विशुद्ध और अव्याघाति है। वह प्रमत्तसंयत मुनि के ही होता है।

English Rendering : The translocational body is auspicious, pure and free from impediments. It originates by a monk in the sixth stage of spiritual development.

टीका : आहारक शरीर से शुभ क्रिया ही की जाती है। इसलिये इसे शुभ कहा गया है। शुभ शब्द का अर्थ मन को प्रीति उत्पन्न करने वाला होता है। आहारक शरीर द्वारा की जाने वाली सभी क्रियाएँ मन में प्रीति उत्पन्न करती हैं। विशुद्ध कर्म का कार्य होने से इसे विशुद्ध कहा गया है। निष्पाप पुण्य कर्म का कार्य होने से आहारक शरीर को विशुद्ध कहा गया है। आहारक शरीर से अन्य पदार्थों का व्याघात नहीं होता और अन्य पदार्थों से आहारक शरीर का व्याघात नहीं होता है, इसलिये दोनों तरफ से व्याघात का अभाव होने से आहारक शरीर को अव्याघाती कहा गया है।

जब आहारक शरीर का निष्पादन प्रारम्भ होता है, उस समय मुनि का प्रमत्तसंयत गुणस्थान ही होता है। इसलिये प्रमत्तसंयत मुनि के ही आहारक शरीर होता है, यह कहा है। इष्ट अर्थ के निश्चय करने के लिये सूत्र में 'एवकार' पद को ग्रहण किया गया है।

सूत्र 36 की टीका में आहारक शरीर के द्वारा प्रमत्तसंयत मुनि सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान करने, असंयम को दूर करने आदि के लिये इसकी उत्पत्ति का उल्लेख है। आहारक शरीर में जो विशेषताएँ पाई जाती हैं, वे इस प्रकार हैं –

आहारक शरीर एक हाथ प्रमाण ऊँचा होता है। वह चन्द्रकान्त मणि के समान, निर्मल स्फटिक के रङ्ग का अथवा हंस के समान धवल होता है। सर्वाङ्ग सुन्दर, समचतुरस्र संस्थान से युक्त होता है। निगोदिया जीवों से रहित होता है। भाव एवं द्रव्य से पुरुष वेदवालों को ही होता है; स्त्री या नपुंसक वेदवालों को नहीं। प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन, मनःपर्ययज्ञान एवं परिहारविशुद्धि संयम के साथ आहारक शरीर नहीं पाया जाता। इसका जघन्य एवं उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। यह क्षण मात्र में कई लाख योजन गमन करने में समर्थ एवं अप्रतिहत गमनवाला होता है। यह रस आदि धातु और संहनन से रहित होता है। वज्र, शिला, जल व पर्वतों में से गमन करने में सक्षम होता है। मिथ्यादृष्टि, असंयत सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत के आहारक शरीर नहीं होता, क्योंकि उनके इसके कारणभूत गुणों का अभाव है।

भरत और ऐरावत क्षेत्रों में जब केवलियों का अभाव हो जाता है, तब विदेह क्षेत्र में केवली भगवान् के पास औदारिक शरीर से जाना शक्य नहीं होता, और ऐसे जाने में असंयम भी बहुत होगा। अतः प्रमत्तसंयत मुनि सूक्ष्म पदार्थ के निर्णय करने के लिये या ऋद्धि का सद्भाव जानने के लिये या संयम परिपालन के लिये आहारक शरीर की रचना करता है। इन बातों के समुच्चय के लिये सूत्र में 'च' शब्द दिया गया है।

Comments : The translocational body performs only the auspicious activities and therefore it is called auspicious. Auspicious means that which is pleasing to the mind. All activities performed by the translocational body are pleasing to the mind. Translocational body is originated as a result of fruition of very pure auspicious karmas and its activities result in the bondage of only auspicious karmas, devoid of inauspicious karmas, as such also it is called pure. The translocational body does not obstruct any other substance and no other substance obstructs this translocational body. As it is not obstructed either way, the translocational body is without impediments.

At the time of formation of the translocational body, the monk is stationed in the sixth stage of spiritual development i.e. Pramattasaṁyata. Therefore, it is stated that only the monks having passional vibrations (Pramattasaṁyata) form the translocational body. To derive the intended meaning, the word 'Evakāra' used in the Sūtra emphasises

that the origin of the translocational body is done only by the monk when he is in the sixth stage of spiritual development and not in any other stage.

Under the comments of Sūtra 36, it was mentioned that with the help of translocational body, a monk resolves a doubt about the intricate interpretation of religion or dispels non-restraint etc. The special features of the translocational body are as follows -

Translocational body is one cubit tall. The colour is like that of pure and transparent quartz gem known as Candrakānta Maṇi or completely white like a swan; has an all over pretty appearance in all respects and completely proportionate having balanced formation of the parts of the body; does not have any 'Nigoda' beings (i.e. one sensed of the lower form). It is manifested by those who are bestowed with Puruṣa Veda i.e. masculine gender both physically and psychically. It does not manifest to those who possess feminine gender or neuter gender; Translocational body cannot be attained with first time attainment of right faith (Prathamopaśama Samyagdarśana) and is not associated with mind-reading-knowledge (Manaḥparyaya Jñāna) and violence refraining conduct (i.e. Parihāra Viśuddhi). The maximum & minimum duration of its existence is one Antarmuhūrta. It is capable of travelling several lakh Yojanas distance in a moment without any impediments; is without any kind of body juices, body-elements and body-skeleton; is capable of travelling through admantine spheres, rocks, water and mountains. It can not be manifested by Wrong Believers, Right Believers without vows and by those having Partial Vows as they can not possess pre-requisite purity of thoughts.

When there is absence of omniscients in Bharata and Airāvata Kṣetras and it is not possible to go to 'Videha Kṣetra' with the gross body and more over it would also cause extreme violence; as such the monk in sixth stage of spiritual development forms the translocational body for resolution of intricate problems of religion or to ascertain the attainment of extraordinary process acquired or for safeguarding the restraint conduct. The word 'Ca' in the Sūtra is mentioned to indicate these points.

नपुंसक लिङ्ग के स्वामी

Possessors of Neuter Sex Gender

नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि।।५०।।

(नारक-सम्मूर्च्छिनः नपुंसकानि।)

Nārakasammūrcchino Napuṁsakāni. (50)

शब्दार्थ : **नारकसम्मूर्च्छिनः –** नारक और सम्मूर्च्छन (जन्मवाले); **नपुंसकानि –** नपुंसक होते हैं।

Meaning of Words : **Nārakasammūrcchinaḥ -** hellish beings and spontaneous generated ones; **Napuṁsakāni -** (possess) neuter sex gender.

सूत्रार्थ : नारकी और सम्मूर्च्छन जन्मवाले जीव नपुंसक लिङ्गवाले होते हैं।

English Rendering : Hellish beings and spontaneously generated ones are of neuter sex gender.

टीका : लिङ्ग अर्थात् वेद दो प्रकार का होता है – द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्ग। यद्यपि लिङ्ग और वेद में किञ्चित् भिन्नता है।

पुरुष, स्त्री या नपुंसकत्व बतानेवाला शरीर का चिह्न द्रव्यलिङ्ग है और स्त्री, पुरुष एवं स्त्री और पुरुष दोनों की भोगने की अभिलाषारूप आत्मा के विकारी भाव भाव लिङ्ग हैं। नारकी और सम्मूर्च्छन जीव द्रव्य एवं भाव दोनों ही प्रकार से नपुंसक होते हैं।

Comments : 'Liṅga' (i.e. sex gender) or 'Veda' (sex sign) is of two kinds - physical sex-sign and psychical feelings, although there is a slight difference between the two.

That sign of the body forming masculine, feminine or neuter sex gender is known as physical sex-sign or gender and the perverse feelings of sexual enjoyment with a woman, man or both are psychical sexual feelings. Hellish beings and spontaneously generated beings have physical as well as psychical neuter sex gender only.

देवों के लिङ्ग
Sex Genders of Celestial Beings

न देवाः।।५१।।

Na Devāḥ. (51)

शब्दार्थ : **न –** नहीं (नपुंसक लिङ्गवाले); **देवाः –** देव (होते हैं)।

Meaning of Words : **Na -** not (those possessing neuter gender); **Devāḥ -** in celestial beings.

सूत्रार्थ : देव नपुंसक लिङ्गवाले नहीं होते हैं।

English Rendering : Devas do not possess neuter gender.

टीका : देवगति में द्रव्यलिङ्ग तथा भावलिङ्ग एक से ही होते हैं। देव, भोगभूमि और म्लेच्छ खण्ड के मनुष्य और तिर्यञ्चों के केवल स्त्री वेद और पुरुष वेद ही होते हैं, वहाँ नपुंसक उत्पन्न नहीं होते।

Comments : In the celestial life-course, both physical gender and psychical sexual inclination are identical. In the life-courses of celestial beings & Tiryañcas of pleasure-lands and Mleccha Khandas, living beings having only sexual inclination for woman and man are born; no one has neuter sex-inclination.

तीनों वेद वाले जीव
Possessors of Three Genders

शेषास्त्रिवेदाः।।५२।।

(शेषाः–त्रि–वेदाः।)

Śeṣāstrivedāḥ. (52)

शब्दार्थ : **शेषाः –** शेष (जीव); **त्रिवेदाः –** तीनों वेदवाले (होते हैं)।

Meaning of Words : **Śeṣāḥ -** remaining (mundane beings); **Tri-Vedāḥ -** all the three genders.

सूत्रार्थ : शेष सभी जीवों के तीनों वेद होते हैं।

English Rendering : All remaining beings can have all the three genders.

टीका : देव, नारकी, सम्मूर्च्छन, भोगभूमिया और म्लेच्छ खण्ड के मनुष्य और तिर्यञ्चों को छोड़कर शेष सभी जीवों में से कोई स्त्री वेदवाले, कोई पुरुष वेदवाले या कोई नपुंसक वेदवाले होते हैं। वेद के दो प्रकार हैं - द्रव्य वेद और भाव वेद। शरीर की रचना से द्रव्य वेद के लक्षण जाने जाते हैं। भाव वेद में पुरुष वेदवाले स्त्री से समागम की आकांक्षा रखते हैं और स्त्री वेदवाले पुरुष से, लेकिन नपुंसक वेदी दोनों से - पुरुष और स्त्री से समागम की आकांक्षा वाले होते हैं।

Comments : Except those born as celestial beings, hellish beings and human beings & Tiryañcas of pleasure-lands and Mlecchakhandas, remaining ones may have any one of masculine, feminine or neuter gender. Veda or sex gender is of two kinds - physical and psychical. Physical sex gender is known by the signs of the physical body. The characteristics of psychical sex gender are that those who have volitions for sexual enjoyment with woman possess masculine sex gender and those who desire to have sexual enjoyment with man possess feminine sex gender. But those having neuter gender possess desire for sexual enjoyment with both man and woman.

अकालमरण से रहित जीव
Souls free from Untimely Death

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसङ्ख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः।।५३।।

(औपपादिक-चरम-उत्तम-देह-असङ्ख्येय-वर्ष-आयुषः अनपवर्त्य-आयुषः।)

Aupapādikacaramottamadeha(a)saṅkhyeya-varṣāyuṣo(a)napavartyāyuṣaḥ. (53)

शब्दार्थ : **औपपादिक –** उपपाद जन्मवाले (देव और नारकी); **चरमोत्तमदेह– –** चरम उत्तम देहवाले (अर्थात् उसी भव से मोक्ष जानेवाले); **असङ्ख्येयवर्षायुषः –** असङ्ख्यात वर्ष आयुवालों की (भोगभूमि के जीव); **अनपवर्त्यायुषः –** आयु अपवर्तन रहित (होती है)।

Meaning of Words : **Aupapādika -** those born instantaneously i.e. celestial beings & hellish beings; **Caramottamadeha -** those born with last superior bodies i.e. those who would attain salvation in the same life-course; **Asaṅkhyeyavarṣāyuṣaḥ -** those whose life-span is of in-numerable years i.e. those who are born in pleasure-lands; **Anapavartyāyuṣaḥ -** can not be cut short or reduced.

सूत्रार्थ : उपपाद जन्मवाले देव और नारकी, चरम उत्तम देहवाले अर्थात् उसी भव से मोक्ष जानेवाले तथा असङ्ख्यात वर्ष आयुवाले (भोगभूमिया जीव) जीवों की आयु अपवर्तन रहित होती है।

English Rendering : The life-span of those who are born by instantaneous bed or seat rise i.e. celestial beings and hellish beings, those with the last superior body i.e. who would attain salvation in their that very birth-course and those having age-span of in-numerable years i.e. born in pleasure-lands, can not be cut short.

टीका : आठ कर्मों में आयु कर्म एक कर्म है। भुज्यमान (वर्तमान में भोगी जानेवाली) आयु कर्म दो प्रकार का होता है – सोपक्रम आयु या अपवर्तनीय आयु और निरुपक्रम आयु या अनपवर्तनीय आयु। उनमें से जिस आयु के प्रमाण में प्रतिसमय समान निषेक निर्जरित होते हैं, इस प्रकार की आयु निरुपक्रम अर्थात् अपवर्तन रहित या अनपवर्तनीय आयु है। और जिस आयु कर्म के भोगने में पहले तो समय-समय में समान निषेक निर्जरित होते हैं, परन्तु उसके अन्तिम भाग में बहुत से निषेक एक साथ निर्जरित हो जाए, इस प्रकार की आयु सोपक्रम या अपवर्तनीय आयु कहलाती है। आयु कर्म के बन्ध में ऐसी विचित्रता है कि जिसके निरुपक्रम आयु का उदय हो, उसके समय-समय समान निर्जरा होती है, इसलिये वह उदय कहलाता है और सोपक्रम आयु वाले के पहले अमुक समय में तो उपर्युक्त प्रकार से ही निर्जरा होती है तब उसे उदय कहते हैं, परन्तु अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में सभी निषेक एक साथ निर्जरित हो जाते हैं, इसलिये उसे उदीरणा कहते हैं।

उत्तम यानी उत्कृष्ट। चरम देह उत्कृष्ट होती है, क्योंकि जो जीव केवलज्ञान पाते हैं, उनका शरीर केवलज्ञान प्रकट होने पर औदारिक से परम औदारिक हो जाता है।

जिस शरीर से जीव को केवलज्ञान प्राप्त नहीं होता, वह शरीर चरमशरीर नहीं होता और परम औदारिक भी नहीं होता। मोक्ष प्राप्त करने वाले जीव के शरीर के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध केवलज्ञान प्राप्त होने पर कैसा होता है, यह बताने के लिये इस सूत्र में चरम और उत्तम ऐसे दो विशेषण दिये हैं। जब केवलज्ञान प्रकट होता है, तब उस शरीर को चरम सञ्ज्ञा प्राप्त होती है और वह परम औदारिक हो जाता है, इसलिये उसे चरम और उत्तम संज्ञा प्राप्त होती है। वज्रवृषभनाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान के कारण उसे उत्तम सञ्ज्ञा तो दी जा सकती है, परन्तु चरम न होने से चरमोत्तम नहीं कहा जा सकता। अतः यहाँ ऐसे जीव, जो केवलज्ञान प्राप्त कर उसी शरीर से मुक्त होते हैं, उनके लिए 'उत्तम' और 'चरम' ऐसे दो विशेषण दिये गये हैं।

सोपक्रम यानी कदलीघात अर्थात् वर्तमान के लिये अपवर्तन होने वाले आयुवाले के बाह्य में विष, वेदना, रक्त द्वारा क्षय, भय, शस्त्र का घात, श्वासनिरोध, अग्नि, जल, सर्प, अजीर्ण भोजन, वज्रघात, शूली, हिंसक जीव, तीव्र भूख या प्यास आदि कोई भी निमित्त होते हैं।

Comments : 'Āyu Karma' or age determining karma is one of the eight karmas. 'Bhujyamāna Āyu' or the present age which is being enjoyed by a Jīva is of two types - 'Sopakrama' or 'Apavartanīya Āyu' i.e. the age that can be cut-short and 'Nirupakrama' or 'Anapavartanīya Āyu' i.e. age that can not be cut-short. Out of these, the age in which karmic molecules pertaining to the age continue to shed regularly all the time in common quantum is known as 'Nirupakrama' or 'Anapavartanīya Āyu' and the age in which the kārmic molecules pertaining to age shed regularly at a common pace in the initial stages but at the end, all remaining kārmic molecules shed simultaneously, is known as 'Sopakrama' or 'Apavartanīya Āyu'. In the bondage of age determining karma, pecularity is that when there is rise of 'Nirupakrama Āyu karma', there is common sheding of kārmic molecules all through the life-span and therefore it is termed as 'Udaya' or rise but in case of 'Sopakrama Āyu', the shedding is at a comman pace as stated above in the initial stages and the same is then termed as 'Udaya' but in the last Antarmuhūrta, all the karmic molecules shed away at one time and therefore it is called 'Udīraṇā' i.e. fruition before due time.

'Uttama' means the best. 'Carama' or the final or last body is termed as the best because those who attain omniscience, their bodies on attainment of omniscience get transformed from 'Audārika' to 'Parama Audārika' (i.e. from normal gross body to extremely pure gross-body). The body by which omniscience is not attained is not the 'Carama Śarīra' and does not transform into extremely pure body (i.e. free from all kinds of impurities). To indicate the cause and effect of the body with those who attain salvation, in this Sūtra, the two adjectives 'Carama' & 'Uttama' are assigned to the body. With the manifestation of omniscience, the body becomes final or last one and it transforms into 'Parama Audārika' and therefore it is termed as 'Uttama' or the best. The adjective 'Uttama' can be assigned for an asseous structure (i.e. Vajra-ṛṣabhanārāca Saṁhanana) and completely balanced body shape (i.e. Samacaturasara Saṁsthāna) but 'Carama' can not be assigned to it. As such, the adjectives 'Uttama' & 'Carama' are to indicate such bodies of the souls who beget salvation on attainment of omniscience.

The following can be the causes for 'Sopakrama' or untimely death - poison, agony, loss of blood, fear, arms-fatal injury, obstruction in respiration, fire, water, snake bite, intake of indigestive food, lightening, hanging by neck, wild beasts, extreme hunger or thirst etc.

इति तत्त्वार्थसूत्रे द्वितीयोऽध्यायः।

End of Second Chapter of Tattvārthasūtra.

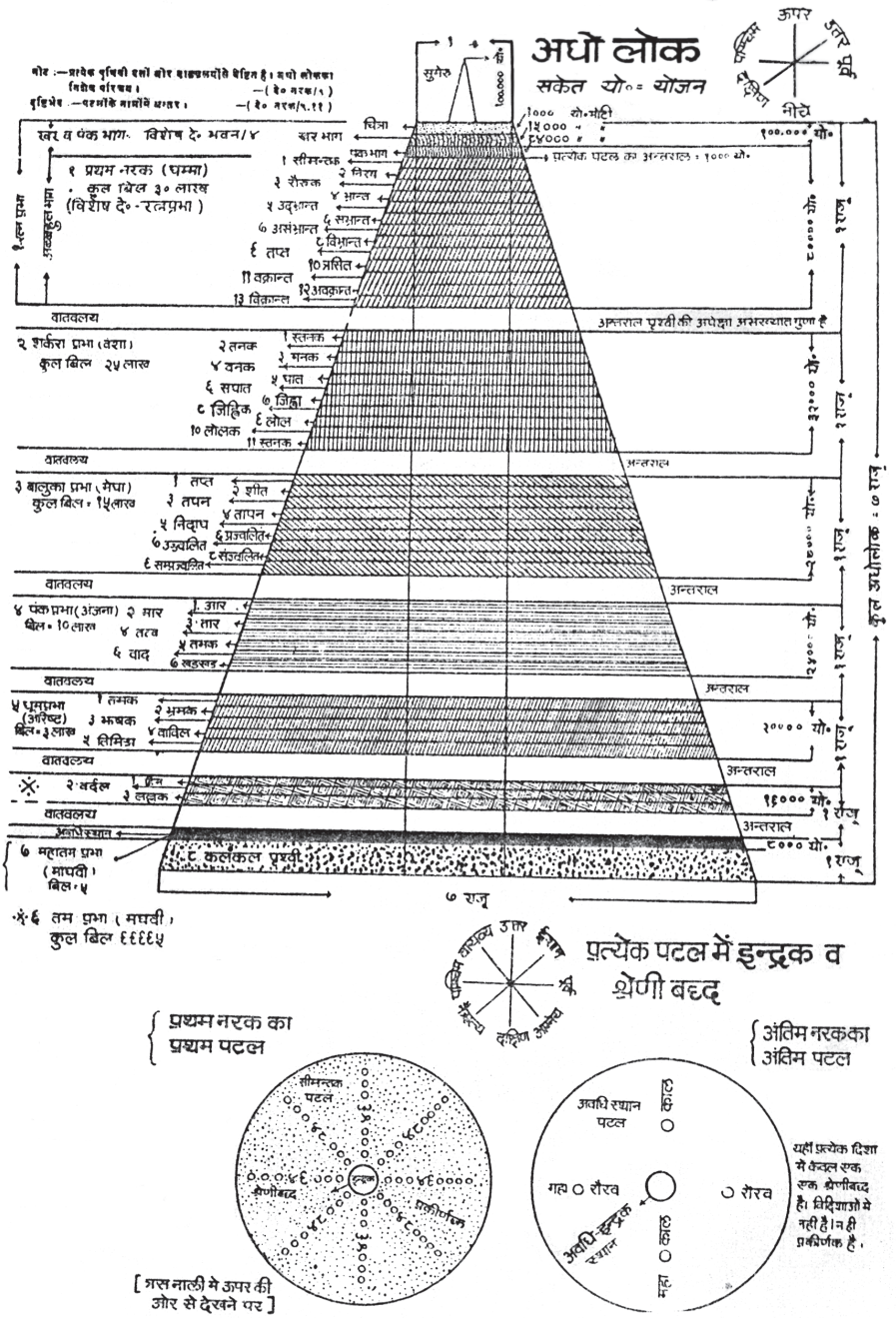

अधो लोक
सकेत यो० = योजन
ऊपर
उत्तर
पूर्व
पश्चिम
दक्षिण
नीचे
सुमेरु
चित्रा
खर व पंक भाग – विशेष दे० भवन/४
पंक भाग
१ प्रथम नरक (घम्मा)
कुल बिल ३० लाख
(विशेष दे० - रत्नप्रभा)
१ सीमन्तक
२ निरय
३ रौरुक
४ भ्रान्त
५ उद्भ्रान्त
६ सम्भ्रान्त
७ असंभ्रान्त
८ विभ्रान्त
९ तप्त
१० त्रसित
११ वक्रान्त
१२ अवक्रान्त
१३ विक्रान्त
प्रत्येक पटल का अन्तराल = १००० यो०
वातवलय
अन्तराल पृथ्वी की अपेक्षा असंख्यात गुणा है
२ शर्करा प्रभा (वंशा)
कुल बिल २५ लाख
१ स्तनक
२ तनक
३ मनक
४ वनक
५ घात
६ सघात
७ जिह्वा
८ जिह्विक
९ लोल
१० लोलक
११ स्तनक
अन्तराल
३ बालुका प्रभा (मेघा)
कुल बिल = १५ लाख
१ तप्त
२ शीत
३ तपन
४ तापन
५ निदाघ
६ प्रज्वलित
७ उज्वलित
८ संज्वलित
९ सम्प्रज्वलित
४ पंक प्रभा (अंजना)
बिल = १० लाख
१ आर
२ मार
३ तार
४ तत्व
५ तमक
६ वाद
७ खड़खड़
५ धूमप्रभा (अरिष्ट)
बिल = ३ लाख
१ तमक
२ भ्रमक
३ झषक
४ वाविल
५ तिमिश्र
२ वर्दल
३ लल्लक
अवधिस्थान
७ महातम प्रभा (माघवी)
बिल = ५
८ कलंकल पृथ्वी
७ राजू
१ राजू
कुल अधोलोक = ७ राजू
२०००० यो०
१६००० यो०
८००० यो०
६ तम प्रभा (मघवी)
कुल बिल ९९९९५
प्रत्येक पटल में इन्द्रक व श्रेणी बद्ध
उत्तर
पश्चिम
दक्षिण
प्रथम नरक का प्रथम पटल
सीमन्तक पटल
इन्द्रक
श्रेणीबद्ध
प्रकीर्णक
[त्रस नाली में ऊपर की ओर से देखने पर]
अंतिम नरक का अंतिम पटल
अवधि स्थान पटल
काल
महा काल
रौरव
महा रौरव
अवधि-इन्द्रक स्थान
यहाँ प्रत्येक दिशा में केवल एक एक श्रेणीबद्ध है। विदिशाओं में नहीं है। न ही प्रकीर्णक है।